युक्रान्द

सितंबर १९७३

मूल्य एक रु.

हे रजनीश ! हे सखे ! हे निरंगी !

हे रजनीश ! हे सखे ! हे निरंगी !
जिसने तेरे उज्जवल परिधान पर,
विक्षिप्त रोष व विरोध का कीचड़ छींटा,
तूने उन पर बिखराई अनुराग की गुलाल
खेली आत्मीयता की फाग ।
हे रजनीश ! हे ईशू !
विरोधी क्रोध से लाल हुए ...टेसू,
सगुनी बेगुनी सब बैंगनी हो गए
तूने भक्तों को गेरुआ कर डाला
संन्यासी बनाकर पहना दी ध्यान माला
तेरे प्रेम की बसंती बयार में विभोर हो
वे नृत्य करते मोर हो ।
हमारे कच्चे रंग तुम पर रंगहीन हैं
सूर्य में सब रंग घुल मिल कर एक हो गए ।
तुम्हारा परिधान और भी धवल हो गया,
तेरे धवल सत्य के प्रकाश में
ध्यान की अन्तिम आसमानी पार्श्वभूमि में
संसार की इन्द्रधनुषीय प्रक्षिप्तता है ।
अब तो ऐसा ही लगता है ।।
हमारी पहुंच तेरे वस्त्रों तक रही, पर हम जब भटके काम-कुंजों में
तुमने ही रंग डालकर शुरुआत की
वह भी हमारे सूक्ष्म गुह्य अंगों पर,
चित्त पर, चैतन्य पर, सुदर्शन आज्ञा चक्र पर
और वो रंग अब काल से निर्बंध हो अमिट हो गए हैं ।
हे निरंगी ! डूबने दे मेरे व्यक्ति को—गहन नीलभ शांति में ।
उभरने दे समाज क्रांति की हरी तरुणाई—छाने दे विश्व पर—
तेरी मुस्कान की प्रभामय अरुणाई ।।

● *अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'*
बिनेकी, सिवनी (म.प्र.)

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

सितंबर १९७३

युक्रांद

वर्ष – ५ अंक – ५ : ६

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
,, वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द
सितंबर '७३

– मानसेवी सम्पादक मण्डल –
अरविन्द कुमार
सुश्री डा. उर्मिला ✶●✶ 'आकुल' राजेन्द्र
आलोक पाण्डे
व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अ नु क्र म णि का

झुकना है सुरक्षा और खाली होना है भरे जाने का राज !	: ५ :	संकलन : स्वामी आनंद मैत्रेय बंबई
कृष्ण और गीता (प्रवचन)	: ३५ :	संकलन अरविन्दकुमार

गीत : काव्य

जड़ और धड़	: ३ :	डा० किशोर काबरा
हे रजनीश ! हे सखे !	: कवर :	अवधेश श्रीवास्तव
हे निरंगी !	: २ :	बिनेकी, सिवनी
दीपोत्सव-संदेश	: ४ :	भगवान रजनीश

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

जड़ और धड़

★

शून्य का बीज
जब मिटता है माटी में
पत्ते लहराते हैं अम्बर की छाती में
लेकिन
वह उतना ही नभ में बढ़ पाता है
जितना वह धंसता है
धरती की थाती में।

इसका यह भाव हुआ—
जड़ के फैलाव पर ही
धड़ का फैलाव हुआ।

इसका यह भाव हुआ—
तरुवर तो फैला है ऊपर भी नीचे भी
एक ओर पत्ते हैं
एक ओर जड़ है
दोनों के बीच खड़ा अडिग अचल
धड़ है।
लेकिन
क्या दोनों में दूरी है, अन्तर है?
छिनुगी-सी जड़ का रस
फुनगी तक चढ़ता है
मूल में छिपा गुलाल डाल-डाल
बढ़ता है
रस-धारा एक
मगर

आंखों की सीमा तो खण्ड-खण्ड
करती है।

इसीलिए
बाहर से लगता है—
धड़ का फैलाव जैसे जाता हो बादल में
इसीलिए
बाहर से लगता है--
जड़ का फैलाव जैसे जाता रसातल में।

जीवन का तरुवर भी
ऐसा ही गूंगा है बहरा है
दुनिया में उतना ही फैला है
फहरा है
जितना वह अन्तर में गहरा है।

जीवन में
पाने और खोने की धारा है एक
मगर
दोनों में कई-कई खण्ड किये जाते हैं
दो दिन के नाटक में
सैकड़ों पाखण्ड किये जाते हैं।

लेकिन जो समझ गए--
पाने के पहले कुछ खोना है
वे तरुवर
जीवन की बगिया में
युग-युग तक अखण्ड जिए जाते हैं।

● डा० किशोर कावरा
एम.ए., पी-एच.डी.
१२०८, डहेलावाली खिड़की
शाहपुर, अहमदाबाद-१

सूत्र :

झुकना है सुरक्षा ।
और झुकना ही है
सीधा होने का मार्ग ।
खाली होना है भरे जाना ।
और टूटना—टुकड़े-टुकड़े
हो जाना है पुनर्जीवन !
अभाव है सम्पदा ।
सम्पत्ति है विपत्ति और
विभ्रम ।
इसलिए संत उस एक का ही
आलिंगन करते हैं;
और बन जाते हैं
संसार का आदर्श ।

▲

[२० जुलाई १९७२ को बम्बई में लाओत्से के ताओ-तेह-किंग पर दिया गया भगवान रजनीश का एक अमूल्य प्रवचन]

▼

झुकना है सुरक्षा और खाली होना है भरे जाने का राज !

भगवान श्री :

एक अनूठी घटना दिखाई पड़ती है संसार में। सभी सफल होना चाहते हैं और सभी असफल हो जाते हैं। नहीं है कोई जो सुख नहीं चाहता हो। और ऐसा भी कोई नहीं है, जो चाह-चाह कर भी सिवाय दुख के कुछ और पाता हो। जीना चाहते हैं सभी और सभी मर जाते हैं। जरूर कहीं कोई जीवन का गहरा नियम अपरिचित रह जाता है। उसका यह दुष्परिणाम है।

एक व्यक्ति असफल होता हो, तो जिम्मेवारी उसकी हो सकती है। लेकिन जब जगत में सभी सफलता चाहने वाले असफल हो जाते हों तो जिम्मेवारी व्यक्तियों की नहीं रह जाती, तब कहीं जीवन का कोई बुनियादी नियम ही चूक रहा है। एक व्यक्ति सुख चाहता हो और दुख में पड़ जाता हो, तो समझ ले सकते हैं कि उसकी भूल होगी। लेकिन जहां सभी सुख चाहनेवाले दुख में पड़ जाते हों, वहां व्यक्तियों पर जुम्मा नहीं थोपा जा सकता। **जीवन के नियम को समझने में ही सभी की समान भूल हो रही है।**

लाओत्से का यह सूत्र इस बुनियादी भूल से ही सम्बन्धित है। लाओत्से कहता है कि जो जीतने की कोशिश करेगा वह हारेगा। हम इसलिए नहीं हारते हैं कि कमजोर हैं। हम इसलिए हारते हैं कि हम जीतने की कोशिश करते हैं। इसे थोड़ा हम समझ लें। क्योंकि मनुष्य जाति का जो बुनियादी भ्रान्त तर्क है वह इस पर ही निर्भर है। हारता हूं मैं तो सोचता हूं कि कमजोर था। तो शक्ति और बढ़ा लूं तो जीत जाऊंगा। थोड़ी शक्ति और बढ़ा लूं, तो जीत जाऊंगा। तो शक्ति को हम बढ़ाने में लगे रहते हैं। लेकिन कितनी ही शक्ति आ जाय आदमी के हाथ में, अन्ततः हार ही हाथ लगती है। जीत उपलब्ध नहीं हो पाती। सिकन्दर हारा हुआ मरता है, नेपोलियन हारा हुआ मरता है, सभी हारे हुए मरते हैं। **कमजोर तो हारते ही हैं, शक्तिशाली भी हारे हुए मरते हैं।** तो तर्क की शक्ति ज्यादा होगी तो हम जीत जाएंगे—गलत है। लाओत्से कहता है कि जीतना चाहोगे तो हारोगे। हार का कारण जीतने की इच्छा में छिपा है शक्ति की कमी में नहीं। असल में जो जीतना चाहता है उसके मन को हम समझें।

जो जीतना चाहता है, तो पहली तो बात एक उसने स्वीकार कर ली कि हारने की भी संभावना है। जो जीतना चाहता है उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि जीतना बहुत

मुश्किल है। जो जीतना चाहता है उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि मेरी जीत दूसरों पर निर्भर करेगी। क्योंकि जीत अपने पर निर्भर नहीं करती। कोई हारेगा तो मैं जीतूंगा। तो जीत में दूसरे की गुलामी छिपी है। सब जीतनेवालों को हारनेवालों का अनुग्रहीत होना चाहिए क्योंकि उनके बिना वे न जीत सकेंगे और जो जीत दूसरों पर निर्भर है उसे हम जीत कह सकते हैं ? अगर मेरी जीत भी आप पर निर्भर है तो आप मेरी जीत के भी मालिक हो गए। आपकी मुट्ठी में फिर बन्द है मेरी चाबी। आप हारेंगे तो मैं जीतूंगा। और यह जगत है विराट और बड़ा और कितनी ही बड़ी शक्ति हो हमारे पास सदा क्षुद्र है—इस जगत की शक्तियों को देखकर—और कितने ही हम हाथ-पैर तड़पाएं हम इस जगत की शक्ति से ज्यादा न हो सकेंगे। हम इसके हिस्से हैं, छोटे से हिस्से हैं। हम हारेंगे ही। और जैसे ही किसी व्यक्ति ने जीतने चाहने की वासना पैदा की, एक बात उसने और स्वीकार कर ली कि अभी वह हारा हुआ है। मनस्विद कहते हैं कि, जो हीन ग्रन्थि से पीड़ित होते हैं, इनफीरियारिटी कम्पलेक्स से पीड़ित होते हैं वे ही केवल जीत में उत्सुक होते हैं, महत्वाकांक्षी हो जाते हैं। महत्वाकांक्षा हीन व्यक्ति का लक्षण है। जैसे दवाई की तरफ बीमार आदमी जाता है ऐसे ही महत्वाकांक्षा की तरफ हीन आदमी जाता है। इसलिए एक अजीब घटना घटती है।

एडलर ने पश्चिम में विगत इस सदी में इस सम्बन्ध में गहरे से गहरा काम किया है। एडलर का कहना है कि जो लोग भी जीवन में किसी बड़ी कमी से पीड़ित होते हैं वे लोग उस कमी की परिपूर्ति के लिए कोई कम्पलीमेन्टरी रास्ता खोज लेते हैं। जैसे लेनिन जब कुर्सी पर बैठता था तो उसके पैर जमीन को नहीं छूते थे। उसके पैर बहुत छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बड़ा था। और एडलर का कहना है कि यह घटना ही लेनिन को बड़े से बड़े पद की तलाश में ले गई। बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठकर उसने दिखा दिया कि पैर चाहे जमीन न छूते हों लेकिन ऐसी कोई कुर्सी नहीं है जिस पर मैं न बैठ सकूं। कठिनाई उसकी यह थी कि वह किसी भी कुर्सी पर नहीं बैठ सकता था। किसी छोटी सी कुर्सी पर भी बैठता सामान्य किसी के घर में तो उसे बेचैनी शुरू हो जाती कि उसके पैर छोटे थे लटक जाते थे। एडलर कहता है कि लेनिन के लिए यही कमी उसकी महत्वाकांक्षा बन गई। उसने कहा कोई फिक्र नहीं, तुम्हारी कुर्सियां

बड़ी हैं और मेरे पैर छोटे पड़ते हैं लेकिन मैं बता दूंगा जगत को कि ऐसी कोई भी कुर्सी नहीं कि जिस पर मैं न बैठ सकूं। किसी भी कुर्सी पर वह ठीक से बैठ नहीं सकता था, यही अभाव दौड़ बन गया। एडलर ने दुनिया के जिनको हम बड़े लोग कहते हैं उनका गहरा अध्ययन किया है और हर बड़े आदमी में जिसको हम बड़ा आदमी कहते हैं, उसमें वह कमी खोज निकाली है जो उसकी महत्वाकांक्षा का कारण है।

यह स्वाभाविक है इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अंधा आदमी अपने कानों की शक्ति को बढ़ा लेता है। बढ़ा ही लेगा। आंख का काम भी उसे कान से ही लेना है। इसलिए अंधों के पास कान अच्छे हो जाते हैं और अगर अन्धे संगीतज्ञ होते हैं तो कोई और कारण नहीं है। कान अच्छे हो जाते हैं। यह कभी आपने ख्याल किया कि कुरूप व्यक्ति अपनी कुरूपता को छिपाने के लिए नामालूम कितनी सुन्दर चीजों का निर्माण करता है। अगर आप दुनिया के चित्रकारों को देखें जिन्होंने सुन्दरतम रचनाएं रची हैं तो आप हैरान हो जाएंगे उनके खुद के चेहरे सुन्दर नहीं हैं। ऐसा हुआ एक गांव में मैं घर में मेहमान था किसी के। और अखिल भारतीय कवियत्री सम्मेलन वहां हो रहा था जिन मित्र के घर मैं ठहरा था। उन्होंने कहा कि आप भी चलेंगे? भारत भर से कोई बीस महिला कवि इकट्ठी हुई हैं। मैंने कहा मैं तो नहीं जाऊंगा—लेकिन एक बात आप ख्याल करके लौटना कि बीस महिलाएं जो वहां हैं उनमें कोई एकाध सुन्दर हैं भी या नहीं। वे थोड़े हैरान हुए कि मैं उनसे ऐसा पूछूंगा। लेकिन लौट कर वे और हैरान हुए। उन्होंने कहा, आश्चर्य! आपने पूछा तब मैं थोड़ा हैरान हुआ था, वहां जाकर मैं और हैरान हुआ वहां बीस थीं महिलाएं—कुरूप थीं।

महिला जब सुन्दर होती है, तो कविता वगैरह करने में नहीं पड़ती। इसलिए दुनिया में सुन्दर महिलाओं ने कुछ नहीं किया। कम्पेन्शेसन नहीं। सौन्दर्य काफी है। किसी और चीज से पूरा करने का विचार नहीं उठता। एडलर का कहना है कि इस दुनिया में जो ठीक-ठीक स्वस्थ व्यक्ति हैं वे किसी महत्वाकांक्षा के पद पर नहीं पहुंच सकते। सिर्फ रुग्ण, बीमार, पंगु व्यक्ति ही महत्वाकांक्षा के पदों पर पहुंच सकते हैं। इसमें सचाई है। इसमें दूर तक सचाई है। जो कम है हमारे भीतर उसे हम पूरा करना चाहते हैं—ओवर कम्पेन्सेट करना चाहते हैं ताकि सारी कमी ढंक जाए, उसकी परिपूर्ति हो जाए। जब कोई

व्यक्ति जीतने की आकांक्षा से भरता है तो उसका मतलब है कि वह जानता है गहरे में कि मैं हारा हुआ आदमी हूं। यह उल्टा दिखाई पड़ेगा। एडलर ने तो अभी खोजा, लाओत्से ने इसे ढाई हजार साल पहले अपने सूत्र में लिखा है। लाओत्से कहता है कि अगर जीतना चाहते हो तो जीतने की कोशिश मत करना वह हार की शुरुआत है। अगर जीतना चाहते हो तो जीतने की वासना ही तुम्हारी सबसे बड़ी शत्रु है। वही सिद्ध कर रही है कि तुम जीतने योग्य भी नहीं हो, वही सिद्ध कर रही है कि तुम गहरी हीनता के गड्ढे से भरे हो, वही सिद्ध कर रही है कि तुम रुग्ण हो, पंगु हो। कहीं कोई पक्षाघात है तुम्हारी आत्मा में, यह किसी और आयाम से भी हम समझें तो ख्याल में आ जाएगा।

अभी कुछ वैज्ञानिक एक नई बात प्रस्तावित कर रहे हैं। डार्विन का ख्याल था कि आदमी इसीलिए विकसित हो सका दूसरे पशुओं से क्योंकि वह ज्यादा बुद्धिमान है, ज्यादा रेशनल है। इसलिए जो संघर्ष है प्रकृति का उसमें आदमी जीत गया और पशु हार गये। अब तक यह बात ठीक मालूम पड़ती रही है। लेकिन अब नवीनतम शोधें इस पर संदेह पैदा करती हैं। और वे कहती हैं कि आदमी का यह जो विकसित तथाकथित विकसित सो काल्ड विकसित रूप दिखाई पड़ता है यह आदमी के ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा श्रेष्ठ होने के कारण नहीं है बल्कि इसका बुनियादी कारण है कि इस पृथ्वी पर आदमी का बच्चा सबसे असहाय पैदा होता है। सबसे हेल्पलेस। और आदमी के बच्चे को मां और बाप पालें और पोसें नहीं और समाज चिन्ता न करे तो आदमियत बच ही नहीं सकती। सभी जानवरों के बच्चे आदमी के बच्चे से ज्यादा शक्तिशाली पैदा होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का बच्चा अगर जानवर की तरह शक्तिशाली पैदा करना हो तो कम से कम मां के गर्भ में उसे २१ महीने रहना चाहिए। लेकिन तब वह पैदा ही नहीं हो सकेगा। मां मर जाएगी क्योंकि वह इतना बड़ा हो जाएगा कि उसके जन्म का उपाय नहीं है। इसलिए अगर ठीक से समझें तो पशुओं को देखते हुए मनुष्य के सब जन्म गर्भपात हैं एबारशन। क्योंकि बच्चा अधूरा पैदा होता है। एबारशन का मतलब यह है ९ महीने का बच्चा अधूरा पैदा होता है। अभी बहुत सी चीजें जो उसमें होनी चाहिए—नहीं हैं। अभी वह विकसित होंगी। हम यह अगर गौर से देखें तो घोड़े का बच्चा है पैदा हुआ चलने

लगा और दौड़ने लगा। आदमी के बच्चे को चलने में अभी वर्षों लगेंगे। पशुओं के बच्चे हैं उठे और अपने जीवन की तलाश में चल पड़े, आजीविका खोजने लगे। आदमी के बच्चे को आजीविका खोजने में २५ वर्ष लगेंगे।

आदमी का बच्चा जगत में सबसे ज्यादा कमजोर प्राणी है और चूंकि आदमी कमजोर है इसलिए उसने ओवर कम्पेन्सेट कर डाला। उसने सब जानवरों को पिछाड़ दिया। उसने सब चीजों की परिपूर्ति कर ली। आदमी के नाखून जानवरों के नाखून से तौलें तो पता चलेगा। अगर आप जानवर से सीधा लड़ें तो आदमी से ज्यादा कमजोर जानवर खोजना जमीन पर मुश्किल है। उसके दांत उसके नाखून क्षण भर में आपको चीड़फाड़ देंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि नाखून की पूर्ति आदमी ने इतनी दूर तक की कि छुरी तलवार एटम बम्ब तक चली गई। वह नाखून की पूर्ति है। वह बढ़ाये चला गया अपने नाखूनों को। वह अपने दांतों को बढ़ाये चला गया। कभी आपने देखा है जब एक टैंक युद्ध की तरफ जाता है—तो आपने टैंक के दांत देखे हैं। वे आदमियों के दांत हैं जो जानवरों से कमजोर हैं—ओवर कम्पेन्सेसन हो गया। हमने और भी दांत पैदा करके जानवरों को मिट्टी में मिला दिया।

नवीनतम शोधें यह कहती हैं कि आदमी को जिसको हम विकास कहते हैं वह शायद उसकी हीनता, कमजोरी असहाय अवस्था का परिणाम है। जो हो एक बात तय है कि ऊपर उठने की आकांक्षा नीचे गिरे होने का सबूत है। जो नीचे गिरा हुआ है ही नहीं वह ऊपर उठना ही नहीं चाहेगा। जो अपने में आश्वस्त है वह किसी दूसरे को आश्वासन दिलाने न जाएगा। जिसका अपने पर भरोसा है वह अपने भरोसे को पाने के लिए दूसरे को हराने के उपद्रव में न पड़ेगा। हम संघर्ष करते हैं कुछ सिद्ध करने को। लड़ते हैं कुछ सिद्ध करने को कि मैं कुछ हूं। यह इस बात की सूचना है कि मुझे भलीभांति पता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। वह जो नोबाडीनेस का, जो नाकुछ होने का भाव है वही हमारी तड़पन बन जाती है कि हम सिद्ध करें जगत में कि मैं कुछ हूं। लेकिन कितना ही हम सिद्ध करें, वह जो नाकुछ होने का भीतर छिपा हुआ बोध है, वह दब जाएगा नष्ट नहीं हो सकता। और कितना ही हम जीतते चले जाएं, भय बना ही रहेगा कि कोई और शक्तिशाली होगा जो मुझे पराजित कर सकता है। और मुझे अपनी शक्ति बढ़ाती ही रहनी होगी। और किसी भी स्थिति में यह स्थिति

नहीं बन सकती कि मेरा मूल जो भय था भीतर की हीनता का वह मिट जाए।

एक चक्कर है, एक दुष्चक्र है, वीसियस सरकिल है। वह दुष्चक्र ऐसा है कि जो मूल चीज है उसको तो हम स्वीकार कर लेते हैं फिर उसके विपरीत में कुछ करने में लग जाते हैं। मेरे पैर में एक घाव है उसको तो मैं नहीं मिटाता; आपकी आंखों में घाव ना दिखाई पड़े, इसलिए मरहमपट्टी कर लेता हूं। वह मरहमपट्टी कि आपकी आंखों में घाव न दिखाई पड़े इसलिए। उस मरहमपट्टी में वह औषधि नहीं जो मेरे घाव को ठीक करे। वह मरहमपट्टी मैं अपने घाव पर नहीं, आपकी आंखों पर कर रहा हूं। आपको मैं धोखा दे दूंगा, मेरा घाव भरता चला जाएगा। आज नहीं कल घाव की मवाद पट्टी से फूटकर बाहर आ जाएगी तो और मोटा पलस्तर मुझे करना होगा। धीरे-धीरे मैं पलस्तरों में घिर जाऊंगा और भीतर सब घाव ही घाव हो जाएगा। क्योंकि मेरी पूरी चेष्टा यह है कि किसी को मेरा घाव पता न चले। लाओत्से जैसे लोग आपके घाव को आमूल रूपांतरित करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हीनता मिटनी चाहिए विजय को पाने की कोई जरूरत नहीं। मैं कुछ हूं इसका पता चलना चाहिए। इसे दूसरों के सामने सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है और कितना ही सिद्ध करो और अगर भीतर मुझे पता नहीं है कि मैं हूं, कुछ ही, तो मैं कितना ही दूसरों को समझा लूं आखीर में मैं पाऊंगा कि मैं वहीं का वहीं खड़ा हूं। दूसरे भला राजी हो जाएं लेकिन मेरे भीतर का कंपन तो कायम रहेगा। जो आदमी सड़क पर खड़ा था कल आज राष्ट्रपति हो गया हो तो भी उसके भीतर की घबराहट और हीनता की मनोदशा वही की वही रहेगी। आज कम प्रगट करेगा क्योंकि उसके पास शक्ति का आयोजन है चारों तरफ इसलिए आज वह आपके सामने प्रकट नहीं करेगा। आपके सामने उसकी कमजोरी छिपी रहेगी। लेकिन खुद के सामने तो जाहिर रहेगी। इसलिए एक और बड़ी अजीब घटना घटती है। जब आदमी बहुत धन इकट्ठा कर लेता है तब उसे पहली दफे पता चलता है कि मैं कितना कमजोर हूं। यह और तीव्रता से पता चलता है क्योंकि कन्ट्रास्ट मिल जाता है जैसे किसी ने काली दीवाल पर सफेद खरिए से लकीर खींच दी हो और भी ज्यादा प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती हो कमजोरी। लेकिन हमारा तर्क यह है कि हम और लोगों को हराएं, और

लोगों को मिटाएं, और लोगों को समाप्त कर दें तो मैं शक्तिशाली और विजेता हो जाऊं। मनुष्य के मन की यह बुनियादी भूल है। इस भूल के खिलाफ यह सूत्र है।

झुकना है सुरक्षा। टू ईल्ड इज टु बी प्रिजर्ब्ड होल। झुकना है सुरक्षा। अगर बचना है तो झुक जाओ। कभी देखा है, जोर की आंधी आती है और लाओत्से को माननेवाले चित्रकारों ने इस घटना के बहुत से चित्र बनाये जोर की आंधी आती है बड़ा वृक्ष अकड़ कर खड़ा रह जाता है। न केवल अकड़कर बल्कि आंधी से लड़ता है। छोटे छोटे पौधे घास के तिनके झुक जाते हैं। क्षण भर बाद आंधी जा चुकी होगी, बहुत से बड़े वृक्ष गिर चुके होंगे, जड़ें उखड़ गई होंगी, छोटे घास के तिनके वापस अपनी जगह पर खड़े हो गये होंगे।

लाओत्से कहता है कि पूछो राज जीवन का छोटे घास के तिनकों से, जिनको बड़ी से बड़ी आंधी उखाड़ नहीं पाती क्या है उनका राज? पूरे के पूरे सुरक्षित रह जाते हैं। इतने कमजोर कि जरा सा झोंका हवा का उन्हें तोड़ दे लेकिन भयंकर झंझावात चलता है और उनकी जड़ें भी नहीं हिलतीं और जरा सी उनकी जड़ें और बड़े बड़े वृक्ष जिनकी गहरी जड़ें हैं जमीन में, भूमिसात हो जाते हैं। पूछो उन बड़े वृक्षों की भूल क्या थी? उन बड़े वृक्षों ने लड़ना चाहा, उन बड़े वृक्षों ने जीतना चाहा। उन बड़े वृक्षों ने झंझावात से युद्ध मोल लिया, उन बड़े वृक्षों ने कहा हम कुछ हैं। वे छोटे घास के तिनके चुपचाप झुक गए। टू ईल्ड इज टु प्रीजर्व होल – झुक गये। उन्होंने कोई झगड़ा ही न लिया। उन्होंने झंझावात को दुश्मन ही न माना। उन्होंने झंझावात को प्रेम से अंगीकार कर लिया। उन्होंने खेल समझा युद्ध न समझा। उन्होंने कहा कि ठीक है झुक जाओ। उन्होंने रास्ता दे दिया। अगर ठीक से समझें तो बड़े वृक्ष जरूर अपने भीतर हीनता से भरे रहे होंगे। वे रास्ता न दे सके। उन्हें लगा कि यह इज्जत का सवाल है, उनकी इज्जत बड़ी कमजोर रही होगी। उन्हें लगा होगा कि यह झंझावात हमें उखाड़ने आया है। कौन झंझावात किसे उखाड़ने आता है? झंझावात अपनी गति से बहता है आंधी को कोई प्रयोजन है बड़े से या छोटे से। आंधी अपनी गति से बहती है, अपने ताओ में, अपने स्वभाव में बहती है। किसी को तोड़ने, उखाड़ने, मिटाने का सवाल ही नहीं है। लेकिन बड़े वृक्ष भीतर हीन रहे होंगे। डरे रहे होंगे, इज्जत का सवाल होगा, रेस्पिक्टेबिलिटी का सवाल होगा, लोग क्या कहेंगे, चारों तरफ लोग क्या हंसी

उड़ायेंगे। उन्होंने इसे चुनौती समझा। झंझावात का जो स्वभाव था इसे अकारण बड़े वृक्षों ने चुनौती समझा। चैलेन्ज समझा।

झंझावात तो किसी के लिए कोई चुनौती नहीं थी। वृक्ष न होते तो भी झंझावात ऐसे ही बहता। यह वृक्ष न होगा तो भी आंधियां बहेंगी। यह वृक्ष नहीं था तब भी आंधियां बहती थीं। आंधियों को वृक्ष से क्या लेना देना। लेकिन वृक्ष का अपना अहंकार आड़ में था। वृक्ष ने सोचा कि मुझे जो मैं इतना बड़ा हूं, चुनौती है लड़ूंगा—जीत कर बताऊंगा। आंधी टूट कर रहेगी। कभी कोई आंधी नहीं टूटती वृक्ष ही टूटता है। फिर बड़ा वृक्ष टकराता है। टकराता है तो जड़ें हिल जाती हैं। ध्यान रखना टकराने से ही हिल जाती हैं आंधी से नहीं। वह जो रेसिस्टेन्स है वृक्ष का, वह जो प्रतिरोध है वही अपनी जड़ों पर आत्महत्या हो जाती है। वृक्ष गिरता है आंधी के कारण नहीं, क्योंकि छोटे छोटे पौधे नहीं गिरते तो वृक्ष के गिरने का क्या कारण होगा। वृक्ष गिरता है प्रतिरोध के कारण, विरोध के कारण, संघर्ष के कारण लड़ने की वृत्ति के कारण। विजय की आकांक्षा से गिरता है। उखड़ जाती हैं जड़ें। वृक्ष भूमिसात हो जाते हैं और जो लड़कर गिरता है वह उठने की क्षमता खो देता है। जो लड़कर गिरता है वह उठने की क्षमता खो देता है क्योंकि जड़ें ही टूट जाती हैं जो फिर उठा सकती थीं।

छोटे पौधे झुक जाते हैं। आंधी गुजर जाती है, बड़ी बड़ी आंधियां गुजर जाती हैं और छोटे पौधे फिर खड़े हैं मुस्कराते हुए, वैसे के वैसे जीवित, शायद और भी जीवित, यह आंधी का जो संस्पर्श है वह उन्हें एक जीवन दे गया। यह जो आंधी उनके ऊपर से बह गई, उनकी धूल--धवांस भी हटा गई। यह जो आंधी उनके पास से गुजर गई इसमें वे स्नान कर लिए। सद्य--स्नात वे पुनः खड़े हो गये। यह आंधी उनके लिए शत्रु न रही मित्र हो गई। यह आंधी उन्हें जीवन का एक पुलक दे गई एक जीवन का अनुभव दे गई। यह आंधी उनके ऊपर से गुजरी मित्र की तरह जैसे रात कोई चादर ओढ़कर सो जाए ऐसा वे आंधी को ओढ़कर सो गये।

चुनौती नहीं थी आंधी उनके लिए, संघर्ष नहीं था। आंधी जा चुकी है वे छोटे पौधे वापस अपनी जगह खड़े हैं--और भी ज्यादा अनुभव से भरे और उनकी जड़ें और भी मजबूत हो गईं। क्योंकि हर अनुभव जड़ों को मजबूत कर जाता है। और वे और आश्वस्त हो गए अपने होने से और आनंदित हो गए और इस जगत के साथ उन्होंने एक गहरी मैत्री भी साध

ली। आंधी तो उनका कुछ बिगाड़ती नहीं। आंधी भी उन्हें बना जाती हैं। सहला जाती है।

लाओत्से कहता है कि झुकना है सूत्र सुरक्षा का टू ईल्ड इज टू बी प्रीजर्व्ड होल। इसे हम और पहलुओं से भी देखें। देखा है छोटे बच्चे रोज गिर जाते हैं चोट नहीं खाते हमारे जैसे। हम भी कभी छोटे बच्चे की तरह थे और गिरते थे और चोट नहीं खाते थे। एक बड़े आदमी को एक बच्चे की तरह २४ घंटे गिर कर देखें तब आपको पता चलेगा सब हड्डी पसली टूट जाएगी। जगह जगह फ्रैक्चर हो जाएगे। होना तो उल्टा ही चाहिए था, बच्चे की हड्डी तो है कमजोर, कोमल आपकी हड्डी तो ज्यादा मजबूत ज्यादा शक्तिशाली। बच्चा गिरता है उठता है खेलने लगता है, आप गिरते हैं सीधा अम्बुलेन्स में सवार हो जाते हैं। क्या, फर्क क्या है? अगर शक्ति ही विजय है और शक्ति ही सुरक्षा है तो बच्चे की हड्डियां भी टूटनी चाहिए, आपकी नहीं। छोड़ें बच्चे को, कभी देखा है शराबी को रास्ते पर गिर जाते। आप गिर कर देखें। जो शराब नहीं पीते साधु हैं भले, जरा गिर कर देखें शराबी की तरह रास्ते पर तब आपको पता चलेगा कि शराबी भी क्या चमत्कार कर रहा है। रोज गिर जाता है रोज घर पहुंच जाता है न हड्डी टूटती है न कुछ होता है। शराबी में क्या राज है? वह बच्चे वाला राज है, यह लाओत्से वाला सूत्र है। असल में बच्चे को पता नहीं कि वह गिर रहा है। वह झुक जाता है। वे गिरने में राजी हो जाते हैं। रिसिस्ट नहीं करता। शराबी का भी राज वही है, जब वह गिरता है तो उसे होश नहीं कि वह गिर रहा है। वह मजे से गिर जाता है। गिरते वक्त आपको होश होता है कि मैं गिरा। आप विरोध करते हैं कि गिरूं ना। वह जो जमीन की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति है, ग्रेवीटेशन है, वह खींचती है नीचे आंधी की तरह और उठते है ऊपर कि नहीं गिरूंगा तो कशमकश में हड्डियां टूट जाती हैं। वही रेसिस्टेन्ट, वही प्रतिरोध जो बड़ा वृक्ष आंधी को देता है, आप भी समझदार होकर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को देते हैं।

लाओत्से कहता है कि गिर जाओ। जब गिर ही रहे हो ईल्ड तब लड़ो मत तब गिर ही जाओ अपनी तरफ से गिर जाओ, साथ दो और हड्डियां नहीं टूटेंगी। वह बच्चा अनजान है उसे कुछ पता नहीं कि क्या हो रहा है। झुक जाता है। बच्चा छोटे पौधे की तरह व्यवहार करता है, शराबी भी। छोटे पौधे की तरह

व्यवहार करता है होश नहीं है इसलिए। यही शराबी होश में दोपहर में गिरेगा तो चोट खाएगा और यही रात पीकर नाली में पड़ा रहेगा, सड़क पर गिर जाएगा और चोट नहीं खायेगा। कई बार ऐसा होता है कि गाड़ी उलट जाती है, कार उलट जाती है छोटे बच्चे बच जाते हैं। लोग समझते हैं भगवान बड़ा दयालु है। अगर भगवान दयालु है तो बड़ों को बचाना चाहिए, इस पर ज्यादा मेहनत हो चुकी है, ज्यादा खर्चा हो चुका है। यह धंधा दया का नहीं है। एक बच्चे पर जिस पर अभी पचीस साल खर्च होगा तब तो लायक हो पायेगा या नालायक हो पायेगा। जिस पर पचीस साल खर्च हो चुके हैं पहले इसे बचाना चाहिए। इसमें काफी इनवेस्टमेंट है, लेकिन ये मर जाता है छोटे बच्चे बच जाते हैं। नहीं, भगवान का कुछ इसमें हाथ नहीं है। छोटे बच्चे बच जाते हैं क्योंकि ईल्ड कर जाते हैं, जो भी हो रहा है उसमें साथी हो जाते हैं। उसके विरोध में खड़े नहीं होते। उसको शत्रुता से नहीं लेते, उसको मित्रता से ले लेते हैं। लेते हैं होश ही नहीं है इसलिए। सन्त इसी को होश से करता है। जो बच्चा अनजाने में करते हैं, जो शराबी बेहोशी में करता है सन्त इसी को होश में करता है। चीन और जापान दोनों मुल्कों में लाओत्से के आधार पर युद्ध की कई कला और कई कौशल विकसित हुए हैं युयुत्सु जुडो। उनका सारा सीक्रेट सारा राज यही सूत्र है ईल्ड—जब दुश्मन चोट करे प्रतिरोध मत करो झुक जाओ। कभी इसका प्रयोग करके देखें कभी कोई जोर से घूंसा मारे तब आप घूसे के खिलाफ बचाव न करो, घूसे के साथ आत्मसात करने के लिए तैयार हो जायें, पी जाएं। और आप पाएंगे जिसने घूंसा मारा है उसकी हड्डी टूट गई। जिसने घूंसा मारा उसकी हड्डी टूट गई। युयुत्सु की कला कहती है कि अगर तुम प्रतिरोध न करो तो तुम सदा जीते हुए हो। इसलिए अगर युयुत्सु जानने वाले से आप पहलवानी करें तो आप हार जाएंगे। हारेंगे नहीं हाथ पैर तोड़ लेंगे। क्योंकि आप चोट करेंगे और वह सिर्फ चोट को पिएगा। उसकी शक्ति जरा भी नष्ट नहीं होगी आप पांच सात चोटें करके हीन हो जाएंगे आपकी शक्ति नष्ट हो जाएगी। बल्कि युयुत्सु की गहरी कला यह है कि जब कोई आपको घूंसा मारता है तो अगर आप शान्ति से स्वीकार कर लेते हैं, तो उसके घूंसे की सारी ऊर्जा आपको उपलब्ध हो जाएगी। आप लड़ें न, उसके घूंसे में कितनी शक्ति व्यय हुई उतनी शक्ति आपके

शरीर में हस्तान्तरित हो जाती है। आप उसे पी गये। दस पांच घूसे उसे मार लेने दें, वह अपने आप थक जाएगा, अपने आप गिर जाएगा। और यह जो मैं कह रहा हूं युयुत्सु कोई अध्यात्म नहीं है यह तो सीधी, सीधी कला है लड़ने की और युयुत्सु की खूबी है कि छोटा बच्चा भी बड़े पहलवान से लड़ सकता है। क्योंकि शक्ति का कोई सवाल नहीं है ईल्ड करने का सवाल है, झुकने का सवाल है। आत्मसात करने का। दो शब्द समझ लें प्रतिरोध और अप्रतिरोध रेसिस्टेन्स और नान रेसिस्टेन्स। अगर आप प्रतिरोध करते हैं तो आप हार जायेंगे। और अगर आप अप्रतिरोध में जीते हैं तो आप नहीं हार सकते। आंधियां निकल जाएंगी आप वापस खड़े हो जाएंगे। झुकना है सुरक्षा। लाओत्से कहता है मुझे कभी कोई हरा न सका, क्योंकि मैं हारा ही हुआ हूं। कैसा मजेदार हो मामला आप लाओत्से से लड़ने चले जाएं वह तत्काल चारों खाने चित्त लेट जाए, कहेगा ऊपर बैठ जाओ। जीत गये गांव में डंका पीट देंगे। आप बड़े मूढ़ मालूम पड़ेंगे। आप वैसे मालूम पड़ेंगे जैसे कभी छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है और बाप नीचे लेट जाता है और छोटा बच्चा ऊपर चढ़ जाता है और छोटा बच्चा चिल्लाता है खुशी में कि जीत गया और बाप जानता है कि कौन जीत रहा है कि कौन जीता रहा है। लाओत्से कहता है कि मैं कभी हराया न जा सका क्योंकि हम सदा हारे ही हुए हैं। तुम आओ हम तैयार हैं। लाओत्से कहता है कि मेरा कभी अपमान नहीं हुआ क्योंकि मैंने कभी उस जगह कदम नहीं रखा जहां सम्मान की अपेक्षा थी। मुझे कभी किसी सभा से बाहर नहीं निकाला गया क्योंकि मैं बैठता हूं वहां ही जहां से बाहर निकालने का कोई उपाय नहीं है। एक सभा में लाओत्से गया तो जहां लोग जूते उतार दिए वह वहीं बाहर बैठ गया। बहुत लोग कहते हैं कि अंदर चलो मंच पर चलो, भीतर बैठो। लाओत्से कहता है कि नहीं, वहां से मैंने कई को निकाले जाते देखा है। हम यहीं बैठेंगे तुम हमारा कुछ भी न कर सकोगे। एक घटना मुझे याद आती है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सभा में गया। सदा उसकी आदत थी नम्बर एक होने की। जरा देर से पहुंचा जैसा कि बड़े आदमियों को पहुंचना चाहिए। बड़े आदमी जानकर देर से पहुंचते हैं क्योंकि छोटे आदमियों को राह न दिखाई जाए थोड़ी-बहुत तो बड़ा आदमी बड़ा ही क्या। थोड़ी देर से पहुंचा था। लेकिन उस दिन कुछ गड़बड़ हो गई

गांव के बाहर से एक विद्वान आ गया था वह सभापति बनकर बैठा हुआ था। व्याख्यान चल रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन जब पहुंचा तो श्रोतागण मगन थे। सुन रहे थे। वह पीछे बैठ गया और तो कोई उपाय न था। बैठकर उसने अपनी कहानियां लोगों से कहनी शुरू कर दीं। थोड़ी देर में उसकी कहानियां ऐसी थीं कि लोग मुड़ते गये आखिर सभापति को चिल्लाकर कहना पड़ा कि नसरुद्दीन यह शोभा नहीं देता। वह बोला यह आपका भ्रम है मेरी तो सदा की मान्यता है कि जहां मैं बैठता हूं वही जगह अध्यक्ष की जगह है। जहां मैं बैठता हूं वही जगह अध्यक्ष की जगह है, जो समझदार हैं वह मुझे पहले ही अध्यक्ष की जगह बैठा देते हैं। जो नासमझ हैं उनकी सभा गड़बड़ होती है। इस गांव में मैं ही अध्यक्ष हूं। हमारा तर्क भी यही है जो नसरुद्दीन का तर्क है। लाओत्से से हम राजी न होंगे। हमारा मन कहेगा यह भी कोई बात है कि जहां लोगों ने जूते उतार दिये हैं वहां बैठ जाएं। होना तो ऐसा चाहिए कि जहां बैठें वहीं अध्यक्ष का पद आ जाए। हमारा भी मन वही कहेगा। आदमी की ना समझी का वही तर्क है।

लाओत्से के चिन्तन का जो मौलिक आधार है वह यही है कि तुम जीतने जाने की वासना में मत मरना। नहीं तो आखिर में हारे हुए लौटोगे। तुम अपेक्षा ही न करना प्रशंसा की अन्यथा तुम निन्दा पाओगे। ऐसा नहीं है कि तुम अपेक्षा न करो तो लोग निन्दा करेंगे ही नहीं। लेकिन तब उनकी निन्दा तुम्हें छुएगी नहीं। तुम अपेक्षा नहीं करोगे तो भी लोग निन्दा कर सकते हैं। लेकिन अब तुम्हें उनकी निन्दा छुएगी नहीं। छूती क्यों है निन्दा ? कहां छूती है? प्रशंसा की जहां आकांक्षा होती है वहीं निन्दा छूती है वहीं घाव है। इच्छा होती है कि नमस्कार करो और आप एक पत्थर फेंककर मार देते हैं। सोचा था फूल लाएंगे और वह पत्थर ले आया। वह जो घाव है पत्थर से नहीं लगता है। ध्यान रखना वह जो फूल की आकांक्षा थी उसकी वजह से ही जो कोमलता भीतर पैदा हो गई उस पर ही घाव बन जाता है पत्थर का। आकांक्षा न हो फूल की तो कोई पत्थर भी मार जाए तो सिर्फ दया आएगी कि बेचारा क्यों मेहनत कर रहा है। व्यर्थ इसका उपाय है, नाहक की इसकी चेष्टा है। बुद्ध पर कोई थूक गया है। उन्होंने पोंछ लिया है अपनी चादर से और उस आदमी से कहा कि कुछ और कहना है कि बात पूरी हो गई। आनंद बहुत आग बबूला हो गया जो पास

ही में बैठा था, उसने कहा कि यह सीमा के बाहर है बात। हद हो गई यह आदमी थूकता है, हमें आज्ञा दें इस आदमी से बदला चुकाया जाना जरूरी है। बुद्ध ने कहा कि आनन्द, तुम समझते नहीं। जब आदमी कुछ कहना चाहता है तो कई बार भाषा बड़ी कमजोर हो जाती है। यह आदमी इतने क्रोध में है कि शब्द और गालियां बेकार हैं। यह थूक कर कह रहा है। यह कुछ करके कह रहा है। जब कोई बहुत प्रेम में होता है तो गले लगा लेता है। तो यह कहना बेकार है कि मैं बहुत प्रेम में हूं। जब आदमी के शब्द कमजोर पड़ जाते हैं तो कृत्य उसे जाहिर करता है—आनन्द तू नाहक नाराज हो रहा है। इस बेचारे को देखा इसका क्रोध बिलकुल उबल रहा है। उबल तो क्रोध आनन्द का भी रहा था। बुद्ध ने आनन्द से कहा लेकिन यह आदमी माफ किया जा सकता है क्योंकि इसे जीवन के रहस्यों का कुछ भी पता नहीं है। तुझे माफ करना मुझे भी मुश्किल पड़ेगा। और फिर मजे की बात आनन्द कि गलती इसने की है अगर गलती भी की है लेकिन तू अपने को दंड क्यों दे रहा है। तुझसे कोई संबंध ही नहीं है यह आदमी मेरे ऊपर थूका है। गलती भी अगर इसने की है तो इसने की है तू आग बबूला होकर अपने क्यों जला रहा है। बुद्ध ने कहा है कि दूसरों की गलतियों के के लिये लोग अपने को काफी दंड देते हैं। दूसरों की गलतियों के लिए। लेकिन हमारे ख्याल में नहीं बैठता।

मुल्ला नसरुद्दीन के पास कोई पूछने आया है क्योंकि गांव में अकेला लिखा पढ़ा आदमी है जैसे कि लिखे पढ़े होते हैं। खुद भी लिखते हैं और पीछे खुद भी ठीक से नहीं पढ़ पाते। मगर गांव में अकेला ही है और अकेला होने से कोई प्रतिस्पर्धा प्रतियोगिता भी नहीं। एक आदमी ने आकर पूछा है कि मुझे कोई आदेश दें कोई धर्म की आज्ञा दें, कोई नियम मुझे बताएं जिस पर चलकर मैं भी सार्थक हो सकूं। नसरुद्दीन ने बहुत सोचा और फिर जो कहा वह पिटा पिटाया एक सिद्धान्त था जो कि विचारक अकसर सोच समझकर कहते रहते हैं। वही जो हजार दफे कहा गया है। नसरुद्दीन ने बहुत सोचकर कहा कि एक सूत्र पर जीवन को चलाओ 'डू नाट गेट एन्ग्री'--कभी क्रोधित मत होओ। या तो आदमी मूढ़ था या बहरा था या उसकी समझ में नहीं पड़ा, या उसने सुना नहीं। उसने फिर कहा कि वह ठीक है। मुझे कोई ऐसी चीज बताएं कि जीवन बदल जाए, मुल्ला ने जोर से कहा कि बता दिया एक दफा ठीक से याद कर लो,

डू नाट गेट एन्ट्री, क्रोधित मत हों। लेकिन वह आदमी मूढ़ था, बहरा था, कि क्या था? तो नहीं समझा तो उसने कहा कि अब आ ही गया हूं तो कोई एक ऐसा स्वर्ण-सूत्र कि जिन्दगी बदल जाए। मुल्ला ने डंडा उठाकर उसके सिर पर दे दिया और कहा कि हजार दफा कह चुका कि 'डू नाट गेट एन्ग्री'।

शायद मुल्ला को ख्याल भी नहीं आया होगा कि क्या हुआ जा रहा है। हमारे खुद के सिद्धान्त भी हमारे काम के नहीं पड़ते। हमारी सलाह हमारे ही काम नहीं पड़ती। सलाह देना बहुत बुद्धिमानी की बात नहीं, कोई भी देता है। अपनी सलाह को भी पूरा करना अति कठिन है।

बुद्ध ने आनन्द से कहा कि इतने दिन से मेरे साथ है तू अब तक इतनी छोटी सी बात भी नहीं समझ पाया। आनन्द तो आग से भर गया। उसने कहा कि आप क्या कहते हैं मुझे तो कुछ सुनाई नहीं पड़ता। जब तक यह आदमी यहां बैठा हुआ है, जिसने आपके ऊपर थूका है, तब तक मैं होश हवास में नहीं हूं। बुद्ध ने कहा कि आनन्द वह भी होश हवास में नहीं है। नहीं तो थूकता ही क्यों। तू भी तो होश-हवास में नहीं क्योंकि जब मैं कहता हूं तो तू कहता कि मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। तुम दो पागलों के बीच मेरी क्या गति है, इस पर भी तो सोचो। जीवन कुछ गहन सूत्रों पर खड़ा है। उनका ख्याल न हो तो कितना ही उनको हम सिद्धान्तों की तरह मान लें, हम उनके विपरीत व्यवहार किये चले जाते हैं। लाओत्से का यह सूत्र तो परम सूत्र है। सुरक्षा का अर्थ है झुक जाना लेकिन यह अति कठिन है, यह बहुत कठिन है। यह क्रोध न करना भी बहुत कठिन पड़ता है जो कि बहुत साधारण सूत्र है। झुक जाना सुरक्षा है यह तो बहुत अच्छा मालूम पड़ता है, पैराडाक्सिकल मालूम पड़ता है। जीतना है तो हार जाओ, सम्मान पाना है तो सम्मान चाहो ही मत। तो यह बहुत उल्टा है।

लेकिन जितने गहरे हम जीवन में जाएंगे उल्टे सूत्र हमको मिलेंगे। इसका कारण यह नहीं है कि वे उल्टे हैं। उसका कारण है कि हम सिर के बल खड़े हैं हम उल्टे दिखाई पड़ते है। हम सिर के बल खड़े है। हमारे पूरे जीवन की चिन्तना उल्टी है। दुख भी पाते हैं उसके कारण फिर भी हमें ख्याल नहीं आता कि हम सिर के बल खड़े हैं। और नहीं आने का कारण है कि आसपास हमारे जो लोग हैं वे भी सिर के बल खड़े हैं। ऐसा समझें कि किसी गांव में आप पहुंच जाएं महा योगियों के, जहां सभी शीर्षासन कर रहें हैं। तो अगर आप में थोड़ी भी बुद्धि हो

तो ग्रपको भी उल्टा खड़ा हो जाना चाहिए। ग्रन्यथा ग्राप उल्टे मालूम पड़ेंगे।

जीसस के पास कोई ग्राया है ग्रौर जीसस से कहता है कि ग्रापकी बातें उलटी मालूम पड़ती हैं। उन्होंने कहा कि मालूम पड़ेंगी क्योंकि तुम सर के बल खड़े हो। लेकिन तुम्हें याद भी नहीं ग्राएगा, क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ भी लोग वैसे ही खड़े हैं। पुरानी पीढ़ी मरते मरते नई पीढ़ी को सर के बल खड़ा होना सिखा जाती है। संक्रामक है बीमारी, एक दूसरे को पकड़ते चली जाती है। फिर इन उलटे खड़े लोगों में सफल होना हो तो उलटा खड़ा होना जरूरी है इसलिये लाग्रोत्से का सूत्र उलटा दिखाई पड़ता है ग्रन्यथा सीधा है। अगर प्रशंसा चाहिए तो निंदा मिलेगी। नहीं चाहिए प्रशंसा तो भी मिल सकती है लेकिन छुएगी नहीं। मगर क्यों, प्रशंसा चाहिए तो निंदा क्यों मिलेगी क्या कारण है, क्या हर्ज है। प्रशंसा चाहने में निंदा क्यों मिलेगी। उसके कारण हैं कि ग्रापके ग्रासपास जो लोग हैं उनका भी तर्क यही है। इसे हम थोड़ा समझ लें। मैं भी प्रशंसा चाहता हूं ग्राप भी प्रशंसा चाहते हैं ग्रौर आपके पड़ोसी भी प्रशंसा चाहते हैं सारा संसार प्रशंसा चाहता है। जहां सभी लोग प्रशंसा चाहते हैं वहां जो ग्रादमी भी प्रशंसा चाहने की चेष्टा में ग्रागे बढ़ेगा वे सारे लोग उसकी निन्दा शुरू कर देंगे। क्योंकि खुद को ऊपर ले जाना चाहते हैं। वे दूसरों को नीचे रखें यह ग्रनिवार्य है। ग्रावश्यक है। ग्रगर ऐसे हर किसी को मैं ऊपर जाने दूं तो मेरी ग्रपनी सम्भावनाएं खो रही हैं। ग्रौर इस जगत में ऊपर कम स्थान होते जाते हैं। जितने ऊपर जाइए उतने स्थान कम, पहाड़ की चोटी, पिरामिड की तरह है यह। जितने ऊपर जाइए उतना स्थान कम होता चला जाता है और जितना ऊपर जाइए उतना दुश्मन बढ़ते चले जाते हैं। जो ग्रादमी बिलकुल शिखर पर पहुंचता है सारा संसार उसका दुश्मन हो जाएगा ग्रौर सारा संसार चाहेगा कि तुम जमीन पर ग्राग्रो ग्रौर सारा संसार साथी हो जाएगा ग्रापको जमीन पर उतारने में। उन सबकी ग्रापस में कलहें हैं वह ग्रलग बात है। लेकिन मैकेबेली ने लिखा है कि ग्रपने शत्रु का शत्रु ग्रपना मित्र है—ठीक है। जिस ग्रादमी को नीचे गिराना है सब गिराने वाले इकट्ठा हो जायेंगे। हालांकि बात ग्रलग है कि जब कल यह गिर जाएगा, ये ग्रापस में फिर लड़ेंगे क्योंकि फिर सवाल उठेगा कि कौन ऊपर उठे। देखा, पिछले महायुद्ध में क्या हुग्रा ?

जो सदा के दुश्मन थे वे मित्र हो गए। कोई सोच सकता था कि स्तालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट साथ खड़े होंगे। कल्पना के बाहर है लेकिन हिटलर जरा सीमा के बाहर चला जा रहा था। वह बिलकुल शिखर पर ही होने की कोशिश कर रहा था। तब रूजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन को साथ खड़े होने में कोई कठिनाई नहीं हुई। एकदम मित्र बन गये। लेकिन यह बात जाहिर थी कि हिटलर के मरते ही यह मित्रता तत्क्षण टूट जाएगी। यह मित्रता ज्यादा देर तक नहीं टिक सकती। यह मित्रता तो सिर्फ हिटलर की वजह से थी। हिटलर के मरते ही खत्म हो गई। दूसरे महायुद्ध में जो मित्र थे युद्ध के हटते ही शत्रुता हो गये। रूस और अमरीका फिर शत्रुता में खड़े हो गए। चीन कम्युनिस्ट है कोई सोच नहीं सकता कि अमरीका से कैसे मित्रता बन सकती है। लेकिन बिलकुल सहज है, नियम से बनेगी, बननी ही चाहिए। क्योंकि अपने शत्रु का शत्रु मित्र है। चीन और रूस के बीच अगर जरा सी भी कलह खड़ी होती है तो अमरीका और चीन के बीच मित्रता बन जाएगी। इस जगत में जो आदमी प्रशंसा की आकांक्षा करता है सभी प्रशंसा चाहने वाले उसके शत्रु हो जाते हैं। सब उसको नीचे खींचने की कोशिश करेंगे। वे निन्दा करेंगे। और ध्यान रहे किसी की प्रशंसा करना बहुत मुश्किल काम है और निन्दा करना बहुत आसान काम है। क्योंकि जब भी आप किसी की प्रशंसा करो लोग पूछेंगे प्रमाण क्या है? लेकिन आप किसी की निन्दा करो तो कोई प्रमाण नहीं पूछेगा कि प्रमाण क्या है? क्यों, क्योंकि हम चाहते ही हैं कि निन्दा सही हो। अपनी प्रशंसा का हम प्रमाण नहीं मांगते, दूसरे की निन्दा का हम प्रमाण नहीं मांगते। अपनी निन्दा का हम प्रमाण मांगते हैं, दूसरे की प्रशंसा का प्रमाण मांगते हैं। प्रमाण क्या है? गवाह कौन है? अगर आपसे कोई आकर कहता है कि फलां आदमी बहुत ईमानदार है तो आप कहते हैं कि प्रमाण क्या है अभी बेईमानी का मौका न मिला होगा। या तुम्हारे पास सबूत क्या है और अगर यह आदमी सबूत भी ले आये तो हम सोचेंगे कि यह आदमी खुद भी लाने वाला ईमानदार है या नहीं। जरूर कोई साजिश होगी कोई षडयंत्र होगा, कोई हाथ होगा। नहीं तो कोई किसी की प्रशंसा क्यों करेगा? कोई आपसे कहे कि फलां आदमी बेईमान है चोर है, आप कहते हैं कि मैं पहले ही जानता था यह होगा ही। इसके लिए कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। तो जो व्यक्ति प्रशंसा चाहेगा

वह सारे जगत से निन्दा को आमंत्रित कर लेगा। अपनी ही तरफ से निमंत्रण बुला रहा है। फिर वह जितना सिद्ध करने की कोशिश करेगा उतना ही दूसरे लोग भी कोशिश करेंगे कि तुम गलत हो।

इस सूत्र का शीर्षक है—फ्यूटिलिटी आफ कन्टेंशन–दावे की व्यर्थता। जब आप दावा करोगे तो सारी दुनिया दावा करेगी कि गलत हो और बड़ा कठिन है दावे को बचा लेना। कोई उपाय नहीं। ये सिद्ध कर ही देंगे कि आप गलत हैं। एक और बड़े मजे की बात है कि एक बार दावा गलत हो जाए सही या गलत फिर उसे कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता है। हमारे हृदय में में इच्छा यह है कि मेरे सिवाय और कोई ठीक नहीं है यह हम जानते हैं। अरब में वह कहते हैं कि ईश्वर हर आदमी को बनाकर एक मजाक कर देता है उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़कर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। सभी से कह देता है यही खराबी है। और प्राइवेट में कह देता है इसलिये कोई दूसरे को पता ही नहीं कि दूसरे को भी यही कहा हुआ है। वह सभी यह ख्याल लेकर जिन्दगी भर चलते हैं कि मुझसे बढ़कर आदमी जगत में दूसरा नहीं है। और सभी यह ख्याल लेकर चलते हैं।

तो लाओत्से का सूत्र हमारे ख्याल में आ सकता है, झुकना है सुरक्षा झुकना ही है सीधा होने का मार्ग। अगर किसी व्यक्ति को सीधा सादा सरल, ऋजु व्यक्तित्व चाहिए हो तो उसे झुकने की कला सीख लेनी चाहिए। हम सब अकड़ने की कला सीखते हैं। हम कहते हैं कि अगर सीधा रहना है रीढ़ के बल खड़े रहना है तो झुकना मत चाहे टूट जाना। सब शिक्षाएं समझाती हैं कि झुकना मत टूट जाना। हम बड़े आदमी उसे कहते हैं कि वह झुका नहीं भला टूट गया। अहंकार का सूत्र यही है कि झुकना मत टूट जाना। लेकिन जीवन का यह सूत्र नहीं है। ध्यान है आपको बच्चों के सब अंग कोमल होते हैं झुकनेवाले होते हैं। बूढ़े के सब अंग सख्त हो जाते हैं झुकते नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि बूढ़े के मरने का जो बुनियादी कारण है वह उम्र नहीं है अंगों का सख्त हो जाना है। अगर बूढ़े के अंग भी इतने कोमल रखे जा सकें जैसे बच्चे का तो मृत्यु का कोई बायलाजिकल कारण नहीं है।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि आजतक वैज्ञानिक यह नहीं समझ पाए कि आदमी क्यों मरता है। क्योंकि जहां तक शरीर का सम्बन्ध है ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि

आदमी बहुत बहुत समय तक क्यों न जी सके। सिर्फ एक बात दिखाई पड़ती है कि धीरे धीरे अंग सख्त होते चले जाते हैं। जब वह जो नमनीयता है फ्लेजबिलिटी है वह खो जाती है। वह नमनीयता का खो जाना ही मृत्यु का कारण है। जितना सख्त हो जाता है सब भीतर उतनी ही मौत करीब आ जाती है। जितना भीतर होता है नमनीय, तरल उतनी मृत्यु दूर है।

यह जो शरीर के सम्बंध में सही है, मनुष्य की अंतरात्मा के सम्बन्ध में और भी ज्यादा सही है। जो झुकने के लिए जितना राजी है उतना ही वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है और जो झुकने से इनकार कर देता है वह तत्क्षण मृत्यु को उपलब्ध हो जाता है। यह दूसरी बात है कि हम मरे हुए भी जी सकते हैं और आत्मा मरी मरी रहे, और शरीर ढो सकता है। अकड़ मौत है आध्यात्मिक अर्थों में। नमनीयता जीवन है।

लाओत्से कहता है और झुकना है सीधा होने का मार्ग – टू बैण्ड इज टू बीकम स्ट्रेट। उल्टी बातें हैं न। झुकोगे, तो लोग कहेंगे ऐसा बार बार झुकोगे आदत हो जायगी झुकने की फिर सीधे कैसे हो सकोगे। इसलिए सीधे रहो झुको मत लेकिन ख्याल है आपको इसकी कोशिश करके देखो— झुको मत सीधे रहो। सीधे रहो। एक चौबीस घंटे बिलकुल न झुकाएं शरीर को सीधा रखें तब पता लगेगा कि अब मौत आ गई। नहीं झुकने से कोई झुकता नहीं, हर बार झुककर सीधा होने की ताकत पुनरजीवित होती है। इसको समझ लें।

दिन भर आप जागते हैं। यह तो अच्छा है कि कोई समझाने आपको आता नहीं कि सोयें मत नहीं तो सुबह जागेंगे कैसे? कुछ हैं ऐसे लोग जो सोने से डरते हैं कि सुबह जागेंगे कैसे? मनोवैज्ञानिकों के पास बहुत से लोग पहुंच जाते हैं जिनको यह भय होता है और बीमारी सख्त होती तभी तक तो अनेक लोग डरते हैं सोने से। उन्हें लगता है कि पता नहीं फिर उठ पाएं कि न उठ पाएं। कम से कम जागते जागते तो मरें। कहीं सोते में ही मर गये, तो पता भी नहीं चलेगा कि मर गए। जिन्दा रहना और तो कभी पता चला ही नहीं, मरने का भी पता नहीं चलेगा। दोनों बातें ही चूक गईं।

लेकिन कोई आपसे कहता नहीं कि सोओ मत नहीं तो जागोगे कैसे, हालांकि सोना उल्टी प्रक्रिया है। सोना बिलकुल उलटा है जागने से। लेकिन कभी ख्याल किया है कि जो आदमी जितना सोता है उतना गहरा जागता है, उतना चैतन्य जागता है। रात जितनी गहरी होती है नींद, सुब

उतना गहरा जागरण।

आपको एक बीमारी का पता तो होगा अनिद्रा का, कि रात अनेक लोग हैं जो सो नहीं पाते लेकिन उनको भी यह ख्याल नहीं है कि जब रात वे सो नहीं पाते, तो दिन वे जाग भी नहीं पाते वह दूसरी बात उनके ख्याल में नहीं है। अनिद्रा की जिसको बीमारी है उसको अजागरण की भी बीमारी होगी। वह ख्याल में नहीं आती उसे, क्योंकि नींद की गहराई में जागने की गहराई निर्भर है। जितनी गहरी होगी नींद, जितनी तलस्पर्शी होगी उतना ही सुबह गहरा जागरण होगा। अगर रात नींद उथली सुबह जागरण उथला। अगर रात नींद बिलकुल नहीं तो सुबह सिर्फ आपकी आंखें खुल गईं आप जागे नहीं।

रात आदमी आँखें बन्द कर लेता है, आंख बन्द कर लेने से कोई सोने का सम्बन्ध नहीं है। हम सब सोचते हैं कि आंख बन्द कर लें तो सो गये, नहीं नींद आती है तो आंख बन्द होती है, आंख बंद कर लेने से दुनिया में कोई नहीं सो सकता। आंखें बंद किये पड़े रहिए। रात भर नींद आती तो आखें बन्द करने का नाम नींद नहीं है। तो ठीक दूसरी बात भी ख्याल रख लें, सुबह आंख खोल ली है उसका नाम जागरण नहीं है क्योंकि जागरण कि अनुपात निर्भर करता है नींद की गहराई पर। इसे और तरह से देखें।

एक आदमी दिन भर मेहनत करता है। जितनी उसकी मेहनत होती है उतना गहरा उसका विश्राम होता है। कई लोग सोचते हैं कि दिन भर विश्राम करते रहें तो विश्राम का अच्छा अभ्यास रहेगा तो रात काफी गहरा विश्राम हो जाएगा। वह गये, उनको विश्राम कभी नहीं हो पाएगा। बल्कि रात उनको बिस्तर पर व्यायाम करना पड़ेगा। क्योंकि जितना व्यायाम करने से बच गए हैं वह कौन करेगा? और सुबह वह थके हुए उठेंगे। क्योंकि जो रात भर जो व्यायाम करेंगे सुबह थके हुए उठेंगे ही। उनकी जिन्दगी में दुष्ट चक्र पैदा हो गया।

वह सोचते हैं विश्राम ज्यादा करेंगे तो ज्यादा विश्राम उपलब्ध हो जाएगा। जिन्दगी उल्टे, विपरीत के सूत्र से चलती है। वह जो अपोजिट, पोलर, है जो ध्रुवीयता है विरोध की उससे चलती है। अगर गहरा विश्राम चाहिए तो गहरा श्रम चाहिए। गहरे श्रम में उतर जाएं, विश्राम अपने आप आ जाएगा। गहरी नींद में चले जाओ, जागरण अपने आप आ जाएगा। ठीक से जाग लें नींद अपने आप आ जाएगी। अगर आपको रात नींद न आती हो तो मैं नहीं कहूंगा कि नींद लाने का उपाय करो। मैं आपसे कहूंगा कि दौड़ो, मकान के सौ पचास

चक्कर लगाओ। नींद न आने का मतलब इतना है कि आपने कोई श्रम नहीं किया आप जागे नहीं है। दौड़ें सौ चक्कर मकान के लगाएं। फिर आपको नींद लाना न पड़ेगा। क्या हो जाएगा।

लाओत्से कहता है कि झुकना ही है सीधा होने का मार्ग यह भ्रांति में मत पड़ना कि अकड़ कर खड़े रहें तो सीधे हो जाएंगे। अकड़ जाएंगे, लकवा लग जाएगा। पैरालसिस हो जाएगी। पैरालसिस का नाम सीधा होना नहीं है। जो झुकने में जितना कुशल है उसके खड़े होने में उतनी जीवन्तता होती है, स्वास्थ्य होता है। जीवन के समस्त तलों पर झुकना सीखना तो आप खड़े हो जाएंगे। लेकिन हम हर जगह हर आदमी अकड़ा हुआ है और अपने को बचा रहा है कि कहीं झुकना न पड़े। कहीं झुकना न पड़े। सभी इस कोशिश में लगे हैं सभी अकड़ गये हैं। फ्रोजन हो गए। अब उनमें खून नहीं बहता। सब अकड़े खड़े हुए हैं। इसलिए एक दूसरे से मिल भी नहीं सकते, मैत्री भी सम्भव नहीं, प्रेम असंभव हो गया है। निकट आना मुश्किल है।

यह जो हमारी अकड़े होने की दुर्दशा है जो आज, उसका कारण वह सूत्र हमारे ख्याल में बैठा हुआ है। झुकना ही मत टूट भला जाना। मिट जाना लेकिन झुकना मत। लेकिन ध्यान रहे हमारा मिटना भी मुर्दा होगा और हमारा टूटना भी सिर्फ विध्वंस होगा।

इस सूत्र के आगे लाओत्से कहता है खाली होना है भरे जाना। टू बी हालो इज टू बी फिल्ड। वर्षा होती है। पहाड़ों पर भी होती है, खड्डों में भी होती है, पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, खड्डे झील बन जाते हैं। खड्डे भर जाते हैं, खाली थे इसलिए और पहाड़ खाली रह जाते हैं क्योंकि पहले से ही भरे हुए हैं। पहाड़ पर भी उतनी ही वर्षा होती है। कोई गड्ढों पर वर्षा विशेष कृपा नहीं करती। सच तो यह है कि गड्डे पहाड़ पर गिरे पानी को भी खींच लेते हैं। अपने में भर लेते हैं। क्या है उनकी ताकत, **खाली होना ही उनकी ताकत है।**

लाओत्से कहता है कि जो जितना खाली है वे इस जगह में परमात्मा का प्रसाद उतना ही ज्यादा उनमें भर जाता है। जो अहंकारी हैं अकड़े खड़े हैं पहाड़ों की तरह वे खड़े रह जाएंगे। जो खाली हैं वह भर जायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि हमें खाली करने की कला आनी चाहिए, हम भरने की फिक्र न करें—हम सब भरने की फिक्र करते हैं। खाली करना हमें डर लगता है, भरे चले जाते हैं, कूड़ा,

कबाड़, कचरा सब भरे चले जाते हैं, इकट्ठा करे चले जाते हैं जो मिल जाए। बर्नार्डशा ने कहीं कहा है कि कई चीजें मैं फेंक सकता हूं अपने घर की लेकिन इसलिए नहीं फेंकता कि कहीं दूसरे न उठा लें। वह भी फिक्र है। ये बेकार हो गई हैं, कोई मतलब की नहीं, लेकिन दूसरे इकट्ठे कर लेंगे तो उनका ढेर बढ़ जाएगा। तो इकट्ठा करते चला जाता है आदमी।

कभी आपने सोचा है आप क्या क्या इकट्ठा करते हैं। क्यों करते रहते हैं? कुछ लोग कोई नहीं तो वे डाक टिकट इकट्ठा कर रहे हैं, पोस्टल स्टैम्प इकट्ठी कर रहे हैं। पूछें उनको क्या हो गया है। लेकिन कोई फर्क नहीं है एक आदमी रुपया इकट्ठा कर रहा है, उसको हम पागल नहीं कहेंगे। एक आदमी डाक टिकट इकट्ठी कर रहा है। एक आदमी कुछ और इकट्ठा कर रहा है। इकट्ठा करना विचारणीय है क्या इकट्ठा करना है यह बड़ा सवाल नहीं है। हम अपने को भर रहे हैं खाली न रह जाएं, कहीं ऐसा न हो कि मौत आए और पाए कि बिलकुल खाली हैं कोई फर्नीचर ही नहीं है पास में। तो हम सब कूड़ा कबाड़ इकट्ठा करके मौत के वक्त कहेंगे कि देखो इतना सब सामान इकट्ठा कर लिया। लेकिन आप खाली ही रह जायेंगे। यह सब सामान आपको खाली रखने का कारण बनेगा। जिस आदमी को भरना है उसे अपने को खाली करना आना चाहिये। इसे, खाली करने का मतलब यह है कि आदमी के भीतर स्पेस चाहिए, जगह चाहिए। जो भी विराट उतर सकता है उसको जगह चाहिए। हमारे भीतर अगर भगवान, परमात्मा आना भी चाहें तो जगह कहां है? है कोई जगह, थोड़ी सी भी, जहां उससे कहा जाय कि कृपा करके आप वहां बैठ जाइए। खुद को बैठने की जगह नहीं है, खुद अपने बाहर खड़े हैं भीतर तो कोई जगह है नहीं। अपने बाहर बाहर घूमते हैं भीतर तो कोई जगह है ही नहीं। परमात्मा मिल भी जाए और कहे कि आते हैं आपके घर में तो वहां स्थान कहां है?

जीवन का जो भी परम रहस्य है वह खुद को खाली करने की कला में निहित है। इसे हम ऐसा समझें।

अगर आप पूछें शरीर शास्त्री से, अगर आप लाओत्से से पूछें तो शरीर शास्त्री की जो आपकी समझ है वह वही कहता है जो लाओत्से कहता है। आपने कभी ख्याल किया है कि आप सांस जब लेते हैं तो आप लेती सांस पर जोर देते हैं कि जाती सांस पर। लाओत्से कहता है कि खाली करने वाली सांस पर जोर देना। लेने की

फिक्र ही मत करना वह अपने से ही आ जाएगी। तो आपको क्या चिन्ता करनी है? आप सिर्फ सांस को उलीच कर बाहर कर देना आप सांस लेना मत अपनी तरफ से। वह काम परमात्मा कर लेगा, प्रकृति कर लेगी। आप सिर्फ खाली कर दो।

जीवन में जो परम रहस्य है परम स्वास्थ्य का वह इतने से फर्क से ही हल हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति सिर्फ सांस को खाली करे और लेने का काम न करे, आने दे अपने से उसे अपूर्व स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाएगा। आप सीढ़ियां चढ़ते हैं थक जाते हैं। अबकी दफे ऐसा करनासीढ़ियां चढ़ते वक्त कि सिर्फ सांस छोड़ना लेना मत और आप थकेगे नहीं। सीढ़ियां चढ़ते वक्त सिर्फ स्वांस छोड़ना, खाली कर देना बाहर और लेते वक्त आप फिक्र मत करना, शरीर को ही लेने देना। और आप पायेंगे कि आप कितनी ही सीढ़ियां चढ़ सकते हैं और नहीं थकेंगे। क्या हो गया, जब आप स्वांस लेते हैं तो भीतर की जो गन्दी स्वांस है वह तो भीतर ही बनी रह जाती है आप ऊपर से सांस ले लेते हैं, वह ऊपर से बाहर चली जाती है भीतर की गंदगी तो भीतर ही भरी रह जाती है। वह भीतर की गंदी साँस कार्बन-डाई-आक्साइड ही आपकी हजार बीमारी और कमजोरी और सब चीजों का कारण है। लेकिन हमारा जोर लेने पर ही क्यों है? वह हमारी वृत्ति के कारण है। हम हर चीज को लेना चाहते हैं छोड़ना किसी चीज को नहीं चाहते, मल-मूत्र भी नहीं छोड़ना चाहते उसको भी संभाल के रखे हुए हैं।

एक वैज्ञानिक विचारक है पश्चिम में मेटथाल अलेक्जेन्डर उसने सारी जिंदगी लोगों की कब्जियत पर काम किया और वह कहता है कब्जियत मानसिक कंजूसी का परिणाम है, शारीरिक उसका कारण नहीं है। जो लोग कुछ भी नहीं छोड़ना चाहते आखिर में वे मल को भी छोड़ना नहीं चाहते। फ्रायड ने तो बहुत अजीब प्रतीक खोजा है एकदम से कठिन मालूम पड़ता है। वह कहता है कि सोने को पकड़ना और मल को पकड़ना एक ही प्रक्रिया है और पीला रंग सोने का और मल का पीला रंग —वह कहता है कि महत्वपूर्ण है। फ्रायड ने तो बहुत मेहनत की है बच्चों पर। क्योंकि मां और बाप सब छुड़वाने की कोशिश करते हैं बच्चे से। जा शरीर को साफ कर, मल को बाहर निकाल। लेकिन बच्चे की समझ में आ जाता है कि एक चीज ऐसी है कि जिससे वह मां-बाप से भी विद्रोह कर सकता है। वह

नहीं जाता। वह कहता है कि नहीं, कोई ख्याल ही नहीं है। वह रोकता है, वह मां-बाप को बताता है कि तुम क्या समझते हो, एक चीज तो कम से कम मेरे पास भी है जो मैं ही कर सकता हूं तुम करवा नहीं सकते।

फ्रायड कहता है, ड्रामेटिक हो जाती है यह घटना। बच्चे की पहली ताकत यही है और तो कोई दूसरी ताकत भी नहीं है उस गरीब के पास। और मां-बाप के पास तो सब कुछ है जो हम कुछ कर सकते हैं। बच्चे के पास एक ताकत है मां-बाप को प्रसन्न कर सकता है अगर वह चला जाए पाखाना, मां-बाप को प्रसन्न कर देगा। ना जाए, घर भर में चिन्ता खड़ी कर देता है। वह दो दिन सम्हाल ले, संयमी हो जाए, सब को बेचैन कर डालेगा। उसके हाथ में एक ताकत आ गई। यह बच्चा सीख रहा है चीजों का रोकना। फिर जिन्दगी भर उसका सम्बन्ध गहरा होता चला जाएगा, हर चीज को रोकने की वृत्ति होती चली जाती है।

कंजूस आदमी अक्सर कब्जियत से भरे होते हैं। जो आदमी सहज चीजों को दे सकता है, बांट सकता है वह कब्जियत का शिकार नहीं होगा। जुड़े हैं हमारे जीवन में, एक आरगेनिक यूनिटी है—सब चीजें जुड़ी हैं अलग-अलग नहीं हैं। छोटी सी चीज भी जुड़ी है, बहुत छोटी चीजें भी जुड़ी हैं।

आप खाना खा रहे हैं लोग भरते चले जा रहे हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चबाते क्यों नहीं लोग, भरते क्यों चले जाते हैं! चबायेंगे तो देर लगेगी भरने की इतनी जल्दी है—भर लेना है। अगर आप ठीक से चबायें तो आपको कम से कम एक कौर ४२ बार चबाना ही पड़ेगा। तभी वह ठीक से चबा। ४२ बार एक कौर! सोच कर ऐसा लगेगा कि जिन्दगी तो चबाने में ही चली जाएगी। भर दो। आपको पता ही नहीं है कि पेट के पास कोई दांत नहीं है। और पेट सिर्फ एक तरह की चमड़ी है। और पेट के पास उसे पचाने का कोई उपाय नहीं है। ऊपर से भरते चले जाएं, नीचे से निकलने मत दें और यह दोनों एक साथ चलती हैं। तो आदमी की जिन्दगी एक कचरे का ढेर हो जाती है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि सब चीजें जुड़ी हुई हैं। जो आदमी ठीक से नहीं चबायेगा वह हिंसक हो जाएगा। उसका व्यवहार हिंसक हो जाएगा। क्योंकि जो आदमी ठीक से चबा लेगा उसकी हिंसा की बड़ी मात्रा चबाने में निकल जाती है। ठीक से चबानेवाले लोग मिलनसार

होंगे। ठीक से नहीं चबानेवाले लोग मिलनसार नहीं होंगे। जो ठीक से चबा लेगा उसका क्रोध कम हो जाएगा। क्योंकि दांत हमारी हिन्सा के साधन हैं जो ठीक से नहीं चबाएगा वह कहीं और क्रोध निकालेगा, वह किसी और को चबाने के लिए तैयार रहेगा।

भरने की जल्दी है कि भरते चले जाओ। यह आपको हैरानी होगी जानकर कि यूनान में—जब सभ्य था यूनान—अपनी ऊंचाई पर पहुंचा तो लोग खाने के टेबल पर साथ में एक पक्षी का पंख भी रखते थे। जैसे दांत साफ करने के लिए हम कुछ लकड़ियां रखते हैं। ऐसे वे हर एक टेबल पर खानेवाले के साथ एक पक्षी का पंख रखते थे। वह इसलिए था कि गटको, फिर पंख को मुंह में डालकर वोमिट कर दो। फिर और खालो। नीरो सम्राट दिन में आठ-दस दफे खाना खाता था। दो डाक्टर रख छोड़ा था। वह खाना खाएगा डाक्टर उसको उलटी करवा देंगे फिर अपने टेबल पर आकर खाना खाएगा। भरते जाओ। क्या कारण है ऐसा हमें भरने का? यह क्या पागलपन है?

मैं घरों में जाता हूं कभी अमीरों के घर में पहुंच जाता हूं तो वहां समझ भी नहीं पड़ता कि वे रहते कहां होंगे! सब भरा हुआ है। सब भरा हुआ है—निकलने का भी रास्ता नहीं है। कैसे निकल कर बाहर आते हैं कैसे भीतर जाते हैं, कुछ पता नहीं। मगर यह घर का ही सबूत नहीं है, भीतर मन का भी सबूत है। क्योंकि हमारे घर हमारे मन हैं और हमारे मन हमारे घर हैं, उसका ही फैलाव हैं। लाओत्से कहता है कि खाली होना है भरे जाना। तुम अपने को भीतर से खाली करने की सोचो भरने का काम प्रकृति पर छोड़ो वह सदा भर देती है, तुम सिर्फ गड्ढे बनाओ, तुम सिर्फ खाली करो, तुम सिर्फ खाली करो और टूटना टुकड़े-टुकड़े हो जाना है पुनर्जीवन। घबड़ाओ नहीं कि टूट जाऊंगा और घबड़ाओ मत कि मिट जाऊंगा, घबड़ाओ मत कि मर जाऊंगा। क्योंकि मरना नये जीवन की शुरुआत है। जन्म शुरुआत है मृत्यु की और मृत्यु पुनः शुरुआत है जन्म की। टूटने से मत घबड़ाओ, टूटने को तैयार रहो। क्योंकि तुम टूट सकोगे तो नये हो जाओगे। नया होने का ढंग एक ही है कि हम बिखरना भी जानें, टूटना भी जानें, समाप्त होना भी जानें। हम पकड़ कर रखना चाहते हैं अपने को कि कुछ न मिटे, टूट न जाए। हम जीवन की प्रक्रिया के विपरीत चल रहे हैं।

यह जीवन की पूरी प्रक्रिया एक वर्तुल है। एक नदी सागर में गिरती

है। सागर में धूप, सूरज की किरणें भाप बनाती हैं। वह भाप फिर आकर पहाड़ पर वर्षा कर जाती है। फिर गंगोत्री में भर जाता है पानी। फिर गंगा बहने लगती है। फिर गंगा जाकर सागर में गिर जाती है। एक वर्तुल है। गंगा अगर सागर में गिरते वक्त कहे कि अगर मैं सागर में गिरूं और बिखरूं तो नष्ट हो जाऊंगी। गंगा अपने को रोक ले, न जाए सागर में गिरने! उस दिन गंगा मृत हो जाएगी; क्योंकि पुनर्जीवित होने का उपाय नहीं रह जाएगा। गंगा को सागर में खोना ही चाहिए। वही उसके नये होने का उपाय है। फिर ताजी हो जाएगी। और ध्यान रखें कि इतनी यात्रा में गंगा दूषित हो जाती है—स्वभावतः। सागर उसे फिर नया और ताजा कर देता है। बिखर जाती है, सब रूप खो जाता है। फिर निमज्जित हो जाती है मूल में। फिर धूप, फिर बादल बनते हैं। फिर इन बादलों में गन्दगी नहीं चढ़ सकती है। बादल शुद्धतम होकर आकाश में आ जाते हैं। फिर हिमालय पर बरस जाते हैं। फिर गंगोत्री—नई और ताजी—फिर यात्रा शुरू हो जाती है।

लाओत्से कहता है कि जीवन एक वर्तुल यात्रा है। टूटना पुनः होने का उपाय है, मिटना नये जीवन की शुरुआत है, मृत्यु नया गर्भाधान है। इसलिए घबड़ाओ मत कि टूट जायेंगे, टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे, अगर झुकेंगे तो मिट जायेंगे, अगर खाली रहेंगे तो क्या भरोसा भरें, न भरें। किस पर विश्वास करें, अपनी सुरक्षा अपने ही हाथ करनी है—ऐसा बचाने की कोशिश जिसने की, वह सड़ जाएगा। उसकी गति अवरुद्ध हो जाएगी। गति का सूत्र है—मिटने की सदा तैयारी। जीवन का महा सूत्र है प्रति पल मरने की तैयारी, प्रतिपल मरते जाना। प्रतिपल मरते जाना।

वाइजिद रात जब विदा होता है अपने शिष्यों से तो रोज नमस्कार करता और कहता कि शायद सुबह मिलना हो, न हो मिलना—आखिरी प्रणाम है। यह रोज आखिरी नमस्कार! सुबह उठकर कहता है कि फिर एक मौका मिला नमस्कार का। शिष्यों ने कई बार वाइजिद को कहा कि आप यह क्या करते हैं, रोज रात को? वाइजिद कहता कि रोज रात को मृत्यु में जाने की तैयारी होनी चाहिए। और तभी तो मैं सुबह इतना ताजा उठता हूं क्योंकि तुम सिर्फ सोते हो मैं मर भी जाता हूं। इतना गहरा उतर जाता हूं, सब छोड़ देता हूं जीवन को। इसलिए वाइजिद की ताजगी पाना बहुत मुश्किल है। सुबह वाइजिद जब

उठता तो वैसे ही जैसे नया बच्चा जन्मा हो। उसकी आंखों में वही निर्दोषिता है। क्योंकि शाम जो मर सकता है, सुबह फिर वह पुन: जीवित हो जाता है। हम तो रात में नींद में भी अपने को पकड़े रहते हैं कि कहीं खिसक न जाएं। संभाले रखते हैं कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए। तो सुबह हम वैसे ही उठते हैं, जैसे हम रात भर सोते हैं।

अभाव है संपदा। सम्पत्ति है विपत्ति और विध्वंस। अभाव है संपदा, न होना संपत्ति है। होना विपत्ति है।

लाओत्से कहता है, जितना ज्यादा तुम्हारे पास होगा उतनी ही तुम अड़चन और मुसीबत में रहोगे। क्योंकि भोग तो तुम उसे पाओगे ही नहीं, सिर्फ पहरा दे पाओगे। और जितना ज्यादा होता जाएगा उतनी तुम्हारी चिन्ता का विस्तार होता चला जाएगा। जिसके पास कुछ भी नहीं है वह प्रतिपल भारहीन निर्भार होकर जी पाता है।

पाम्पेई का नगर जला सारा, गांव भागा। जो जो बन सका जिससे ले जाते, ले चला। ज्वालामुखी फूट पड़ा आधी रात। कोई अपनी तिजोरी ले जा रहा है कोई अपने कागजात ले जा रहा है, कोई अपने बच्चे को, कोई अपनी पत्नी को, जिसको जो सुविधा थी वह लेकर भागा, सभी दुखी हैं, अभी दुखी हैं क्योंकि सभी का बहुत कुछ छूट गया। क्योंकि आग इतनी अचानक थी और क्षण भर रुकना मुश्किल था कि जो हाथ में लगा वह लेकर भागा। सभी रो रहे हैं सिर्फ एक आदमी पाम्पेई की नगरी में नहीं रो रहा है। अरिस्टपिक नाम का आदमी नहीं रो रहा है। तीन बजा है रात का उसी भीड़ में, जहां पूरे नगर के लोग अपना सामान लेकर भाग रहे हैं, वह अपनी छड़ो लिए जा रहा है। अनेक लोग उससे कहते हैं, अरिस्टपिक, कुछ बचा नहीं पाये? अरिस्टपिक कहता है कि कुछ था ही नहीं। हम इकट्ठा करने की झंझट में ही नहीं पड़े तो बचाने की भी झंझट नहीं। सारे लोग भाग रहे हैं और अरिस्टपिक टहल रहा है। लोग उससे पूछते हैं कि तू भाग नहीं रहा है, तो अरिस्टपिक कहता कि इतने वक्त हम रोज ही सुबह घूमने जाते हैं। वह अपनी छड़ी लिए घूमने जा रहा है। चिंतित नहीं हो, पीछे तुम्हारा मकान।

अरिस्टोपस कहता है कि अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है।

अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है, यह अर्थ है अभाव का। अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं और इसलिए मौत भी

अरिस्टोपस से कुछ छीन न पाएगी। इसका यह मतलब नहीं कि आपके पास कुछ भी न हो। इसका मतलब यह भी नहीं कि अरिस्टोपस के पास भी कुछ नहीं था। कम से कम छड़ी तो थी। इसका मतलब कुल इतना है कि वह जो परिग्रह का भाव है कि मेरे पास यह है, यह है, यह है, वही दुख का कारण बनेगा। क्या है, क्या नहीं है यह महत्वपूर्ण नहीं है। भीतर सम्पत्ति को पकड़ने की जो वृत्ति है कि मेरे पास है मेरा है वही दुख का कारण बनेगा। और वही चिन्ताओं का जन्म है। अभाव है सम्पदा। कुछ भी नहीं है। तो उसी के साथ सारी चिन्ताएं भी विलीन हो गईं। यह एक आंतरिक दशा है।

एक छोटी सी कहानी है, जो मुझे बहुत प्रीतिकर रही है। एक सम्राट एक साधु के प्रेम में पड़ गया। साधु था भी अद्भुत। मोह बढ़ता गया सम्राट का, आखिर सम्राट ने एक दिन कहा कि इस वृक्ष के नीचे न पड़े रहें मेरे महल में चलें। साधु उठकर खड़ा हो गया तत्क्षण। उसने कहा कि चलो। सम्राट बड़ा चिन्तित हुआ। सोचा था कि साधु कहेगा कि कहां संसार में उलझाते हो। महल में हम नहीं जा सकते, हमने सब त्याग कर दिया है। सम्राट भी प्रसन्न होता अगर साधु ऐसा कहता और सम्राट और जोर से आग्रह करता कि नहीं महाराज, चलना ही पड़ेगा। पैर पकड़ता, हाथ पैर जोड़ता और सोचता महातपस्वी हैं। साधु खड़ा ही हो गया भिक्षा का पात्र उठा लिया कि थोड़े से पोटली में बंधे हुए कपड़े लत्ते थे दो-चार उन्हें कंधे पर टांग लिया और कहा कि कहां है रास्ता ?

सम्राट के बिलकुल प्राण ही निकल गये। उसने कहा, कहां नासमझ के, किस साधारण आदमी के पीछे मैंने इतने दिन गँवाए ? यह तो तैयार ही बैठे थे, प्रतीक्षा ही थी। सिर्फ हमारी राह ही देख रहा था। हम भी बुद्धू निकले। लेकिन अब कह ही चुके थे, फंस ही गये थे। तो रास्ता भी बताना पड़ा,लेकिन बड़े बेमन से। महल पहुंचते पहुंचते ही साधु तो विदा ही हो चुका था, साधु तो बचा ही नहीं, उसी क्षण जब साधु खड़ा हो गया चलने के लिए। अब तो एक जबरदस्ती का मेहमान था बिना बुलाया मेहमान। लेकिन अब तो कह दिया था सम्राट ने तो उसे ठहराना पड़ा। उसे ठहरा दिया। परीक्षा की दृष्टि से श्रेष्ठतम जो भवन था उसमें ही ठहराया। अच्छे से अच्छे जो भोजन था वही व्यवस्था की। अच्छे से अच्छे कपड़े दिये और साधु गजब का था। साधु था ही नहीं सम्राट की नजरों में। जो भी कहता करने को राजो हो जाता। कहा यह कपड़े छोड़ दो वह

तत्काल खड़ा हो जाता। कीमती वेष-भूषा पहना दी पहन लिया। बड़ा शानदार बिस्तर पर सोने को कहा, मजे से सो गया। सुन्दरतम स्त्रियां सेवा में लगाईं, पैर फैला दिए। सम्राट ने कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक दफा तो यह ना कहे। १५ दिन में ही सम्राट ऊब गया और घबड़ा गया। एक दिन सुबह आकर उसने कहा कि महाराज बहुत हो गया। मुझ में और आप में कोई फर्क ही नहीं। साधु ने कहा फर्क ? जानना कठिन है लेकिन अगर जानना चाहते हो तो मेरे पीछे आओ।

स धु ने कपड़े सम्राट के वापस उतार कर रख दिए अपने कपड़े पहन लिए। अपना डंडा उठा लिया, अपनी झोली अपना भिक्षापात्र, बाहर निकल आया महल के। सम्राट पीछे पीछे चला। नदी आ गई सम्राट ने कहा कि अब बता दें। फकीर ने कहा कि जरा नदी के उस पार, नदी के पार भी निकल गया। सम्राट ने कहा कि अब बता दे वह भेद। उसने कहा कि थोड़ा और आगे। राज्य की सीमा आ गई सम्राट ने कहा, अब ? उस फकीर ने कहा कि अब मैं पीछे नहीं जाना चाहता। तुम भी मेरे साथ चलो। सम्राट ने कहा, यह कैसे हो सकता है ? मेरा महल है पीछे। मेरा राज्य है। उस फकीर ने कहा कि अगर तुम्हें समझ में आ सके फर्क तो समझ लेना। मेरा कोई महल पीछे नहीं है, मेरा कोई राज्य पीछे नहीं है। मैं तुम्हारे महल में था लेकिन तुम्हारा महल मुझ में नहीं है। सम्राट पैर पकड़ लिया और कहा कि महराज बड़ी भूल हो गई। साधु ने कहा कि लौट चल सकता हूं, कोई हर्ज नहीं। लेकिन तुम फिर मुसीबत में पड़ जाओगे। अब तुम लौट ही जाओ, मुझे कोई अड़चन नहीं वापस होने में जैसे ही उस साधु ने कहा वापस, सम्राट का पसीना छूट गया। साधु ने कहा कि फिर तुम पूछोगे कि महाराज, फर्क क्या है ? मुझे तुम जाने ही दो ताकि तुम्हें फर्क याद ही रहे, अन्यथा और कोई कारण मेरे जाने का नहीं है। वापस चल सकता हूं।

क्या है आपके पास, यह सवाल नहीं है, कितना आपके भीतर चला गया है; यही सवाल है। भीतर न गया हो तो आप खाली हैं। अभाव है। उस अभाव में ही विश्रान्ति है, आनन्द है, मुक्ति है।

इसलिए सन्त उस एक का ही आलिगन करते हैं और बन जाते हैं संसार का आदर्श। इस एक नियम का, एक ताओ का, इस खाली होने के सूत्र का, इस झुक जाने की कला का, इस मिट जाने की तैयारी का, इस एक नियम का पालन करते हैं और बन

जाते हैं संसार का आदर्श।

बनना नहीं चाहते संसार का आदर्श, नहीं तो कभी नहीं बन पाएंगे। जो बनना चाहते हैं, वे कभी नहीं बन पाते। जो इन कलाओं को जानते हैं जीवन के वह अनजाने संसार का आदर्श बन जाते हैं।

आज इतना ही कीर्तन करें। फिर जाएं।

● संकलन : *स्वामी आनंद मैत्रेय*
बंबई

मिलें—मुल्ला नसरुद्दीन से

सभी कुछ सापेक्ष है। निरपेक्ष कुछ भी नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन के नगर का नामी कंजूस मर गया था। उसके घर पर सैकड़ों की भीड़ इकट्ठी हो गई, शोक मनाने के लिए नहीं, वरन् यह निश्चयपूर्वक जानने के लिए कि वह मर गया है। जब उसका जनाजा उठने लगा तब भी किसी ने रिवाज के तौर पर भी उसकी प्रशंसा में एक भी शब्द न कहा। आखिर कुछ लोगों ने मुल्ला से अनुरोध किया और कहा : "नसरुद्दीन, तुम तो इनके परिवार को भलीभांति जानते रहे हो और इन्हें भी और लोगों की अपेक्षा अधिक जानते रहे हो। शायद तुम इनके संबंध में कोई अच्छी बात कह सको।"

मुल्ला मान गया और बहुत कुछ सोच-विचार के बाद बोला : "यह मृत व्यक्ति धोखेबाज, दुष्ट, किसी का भला न करने वाला और महाकंजूस था। लेकिन इसके सात भाई अभी और हैं—और उनकी तुलना में यह देवता था।"

●

कृष्ण और गीता

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक २रा, श्लोक ८ से ११ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

युक्तांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के ११ वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युक्तांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे तो—वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय ११ पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

मनुष्य ने सदा ही जीवन के परम रहस्य को जानना चाहा है। क्या है प्रयोजन जीवन का—क्या है लक्ष्य ? क्यों उत्पन्न होती है सृष्टि और क्यों विलीन, कौन छिपा है इस सबके पीछे—किसके हाथ हैं ? उस मूल को, स्रोत को मनुष्य ने सदा ही जानना चाहा है। लेकिन मनुष्य जैसा है, वैसा ही उस परम को जान नहीं सकता। इससे ही दुनिया मे नास्तिक दर्शनों का जन्म होता है। जैसे अन्धा आदमी प्रकाश को जानना चाहे—न जान सके, तो अन्धा आदमी भी कह सकता है कि प्रकाश एक भ्रांति है, और जिन्हें प्रकाश दिखाई देता है—वे किसी विभ्रम में पड़े हैं, किसी इल्यूजन में पड़े हैं।

जो प्रकाश की बात करते हैं, वे अन्धविश्वास में हैं। और अन्धे आदमी की इन बातों में तर्क युक्त रूप से कुछ भी गलत न होगा। अन्धे को प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता और प्रकाश को देखने के अतिरिक्त और कोई जानने का उपाय नहीं है। प्रकाश सुना नहीं जा सकता—अन्यथा अन्धा भी प्रकाश को सुन लेता। प्रकाश छुआ नहीं जा सकता, अन्यथा अन्धा भी उसे स्पर्श कर लेता। प्रकाश का कोई स्वाद नहीं, कोई गन्ध नहीं, तो जिसके पास आंख नहीं है, उसका प्रकाश से संबंधित होने का कोई उपाय नहीं है। तो अन्धा आदमी भी कह सकता है कि जो मानते हैं, वो भ्रांति में होंगे—और अगर प्रकाश है तो मुझे दिखा दो। और इसकी बात में कुछ अर्थ है, अगर प्रकाश है तो मेरे अनुभव में आए—तो ही मैं मानूंगा।

मनुष्य भी परमात्मा को खोजना चाहता है, बिना ये पूछे कि मेरे पास वो आंख—वो उपकरण है, जो परमात्मा को देखें। इसलिए जो कहते हैं कि परमात्मा है, हमें लगता है कि किसी भ्रम में, किसी मानसिक स्वप्न में, किसी सम्मोहन में खो गए हैं। और या फिर अन्धविश्वास कर लिया है किसी भय के कारण, प्रलोभन के कारण, या केवल परम्परागत संस्कार—बचपन से डाला गया मन में, इसलिए कोई कहता है कि परमात्मा है।

परमात्मा है या नहीं—यह बड़ा सवाल नहीं है। ये सवाल भी उठाया नहीं जा सकता, जब तक कि हमारे पास वो आंख न हो, जो परमात्मा को देखने में सक्षम है। प्रकाश है या नहीं, ये सवाल ही व्यर्थ है, जब तक देखने वाली आंख न हो। अन्धे को प्रकाश तो बहुत दूर, अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है। आम तौर से हम सोचते होंगे कि अन्धे को कम से कम अंधेरा तो दिखाई पड़ता ही होगा। हमारी धारणा भी हो सकती है कि अन्धा अंधेरे से घिरा होगा—गलत है ख्याल। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरे का अनुभव भी आंख का ही अनुभव है। तो अन्धे को अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं होता। आप आंख बन्द करते हैं तो आपको अंधेरे का अनुभव होता है, क्योंकि आप अन्धे नहीं हैं। आपको प्रकाश का अनुभव होता है, इसीलिए उसके विपरीत अंधेरे का अनुभव होता है। जिसे प्रकाश का अनुभव नहीं होता, उसे अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं हो सकता। अंधेरा और प्रकाश, दोनों ही आंख के अनुभव हैं। प्रकाश मौजूदगी का अनुभव है, अंधेरा गैर-मौजूदगी का अनुभव है। लेकिन जिसे प्रकाश ही

दिखाई नहीं पड़ा, उसे प्रकाश की अनुपस्थिति कैसे दिखाई पड़ेगी ? वो असंभव है। अन्धे को अंधेरा भी नहीं है। ▶ और जिसे अंधेरा भी दिखाई न पड़ता हो वो प्रकाश के सम्बन्ध में क्या प्रश्न उठाये ? ◀ और प्रश्न उठाए भी तो उसे क्या उत्तर दिया जा सकता है ? और जो भी उत्तर हम देंगे—वो अन्धे के मन को जंचेगे नहीं। क्योंकि मन हमारी इन्द्रियों के अनुभव का जोड़ है। अन्धे के पास आंख का अनुभव कुछ भी नहीं है मन में—तो जंचने का, मेल खाने का—तालमेल बैठने का कोई उपाय नहीं है। अन्धे का पूरा मन कहेगा कि प्रकाश नहीं है। अन्धा जिद करेगा कि प्रकाश नहीं है—सिद्ध भी करना चाहेगा कि प्रकाश नहीं है—क्यों ? क्योंकि स्वयं को अन्धा मानने की बजाय ये मान लेना ज्यादा आसान है कि प्रकाश नहीं है। अन्धे के अहंकार की इसमें तृप्ति है कि प्रकाश नहीं है। अन्धे के अहंकार को चोट लगती है ये मानने से कि मैं अन्धा हूं इसलिए मुझे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। मनुष्य में जो अति अहंकारी हैं वे कहेंगे—परमात्मा नहीं है। बजाय ये मानने के कि मेरे पास वो देखने की आंख नहीं है, जिससे परमात्मा हो तो दिखाई पड़ सके और ध्यान रहे जिसको परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता उसको परमात्मा का न होना भी दिखाई नहीं पड़ सकता क्योंकि न होने का अनुभव भी उसी को होगा जिसके पास देखने की क्षमता है।

नास्तिक कहता है ईश्वर नहीं है, उसके वक्तव्य का वही अर्थ है जो अंधा कहता है कि प्रकाश नहीं है। नास्तिक की तकलीफ ईश्वर के होने न होने में नहीं है। नास्तिक की तकलीफ अपने को अधूरा मानने में, अपंग मानने में, अंधा मानने में है। इसलिए जितना अहंकारी युग होता है उतना नास्तिक होता है। अगर आज सारी दुनिया में नास्तिकता प्रभावी है तो उसका कारण ये नहीं है कि विज्ञान ने लोगों को नास्तिक बना दिया, और उसका कारण ये भी नहीं है कि कम्युनिज्म ने लोगों को नास्तिक बना दिया। उसका कुल मात्र कारण इतना है कि मनुष्य ने इधर पिछले ३०० वर्षों में जो उपलब्धियां की हैं, उन उपलब्धियों ने उसके अहंकार को भारी बल दे दिया है। इन ३०० वर्षों में आदमी ने उतनी उपलब्धियां की हैं जितनी ३ लाख वर्षों में आदमी ने नहीं की हैं। आदमी की ये उपलब्धियां उसके अहंकार को बल देती हैं, वो बीमारी से लड़ सकता है, वो उम्र को भी शायद थोड़ा लंबा सकता है, उसने बिजली को बांध के घर में रोशनी कर ली है, उसके पूर्वज आकाश को बिजली में देखकर कंपते थे और सोचते थे कि इन्द्र नाराज है,

इसको बिजली को बांध लिया है। अगर पुरानी भाषा में कहें तो इन्द्र को उसने बांध लिया है। घर में इन्द्र रोशनी कर रहा है और पंखे चला रहा है। आदमी ने इधर ३०० वर्षों में जो भी पाया है उस पाने से उसे बाहर कुछ चीजें मिली हैं और भीतर अहंकार मिला है—उसे लगता है मैं कुछ कर सकता हूं। और जितना अहंकार मजबूत होता है उतनी ही नास्तिकता सघन हो जाती है—क्योंकि उतना ही ये मानना मुश्किल हो जाता है कि मुझमें कोई कमी है। कोई उपकरण, कोई इन्द्रिय मुझमें खो रही है, अभाव है। मेरे पास कोई उपाय कम है जिससे मैं और देख सकूं। फिर एक और बात पैदा हो गई, हमने अपनी भौतिक इन्द्रियों को विस्तीर्ण करने की बड़ी क्षमता पा ली है। आदमी आंख से कितनी दूर तक देख सकता है—लेकिन अब हमारे पास दूर-दर्शक यंत्र हैं जो अरबों-खरबों प्रकाश वर्ष दूर तारों को देख सकते हैं। आदमी अपने अकेले कान से कितना सुन सकता है लेकिन अब हमारे पास यंत्र हैं—फोन है, रेडियो है, बे-तार के यंत्र हैं—कोई सीमा नहीं, हम कितने ही दूर की बात सुन सकते हैं, और कितने ही दूर तक बात कर सकते हैं। एक आदमी अपने हाथ से कितने दूर तक पत्थर फेंक सकता है। लेकिन अब हमारे पास सुविधायें हैं कि हम पूरे के पूरे यानों को पृथ्वी के घेरे के बाहर फेककर चांद की यात्रा पर पहुंचा सकें। एक आदमी कितना मार सकता है—कितनी हत्या कर सकता है, अब हमारे पास हाइड्रोजन बम हैं कि चाहें तो १० मिनिट में हम पूरी पृथ्वी को राख बना दें। सिर्फ १० मिनिट में। खबर पहुंचेगी, इसके पहले मौत पहुंच जाएगी। तो स्वभावतः आदमी ने अपनी बाहर की इन्द्रियों को बढ़ा लिया, ये सब इन्द्रियों का विस्तार है। इन्द्रियों को हमने अपने यंत्रों से जोड़ दिया है। इन्द्रियां भी यंत्र हैं, हमने और नए यंत्र बनाकर इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ा लिया। इसलिए आदमी इंद्रियों को बढ़ाने में लग गया और उसे यह ख्याल भी नहीं कि कुछ इंद्रियां ऐसी भी हैं जो बंद ही पड़ी हैं। अगर हम पीछे लौटें तो आदमी की बाहर की इन्द्रियों की शक्ति बहुत सीमित थी। और आदमी का बल बहुत सीमित था, आदमी की उपलब्धियां बहुत सीमित थीं। आदमी के अहंकार को सघन होने का उपाय कम था। सहज ही जीवन विनम्रता पैदा करता था। सहज ही चारों तरफ इतनी विराट शक्तियां थीं कि हम निहत्थे, असहाय, हेल्पलेस मालूम होते थे। बाहर तो हमारे बल को बढ़ने का कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता था—इसलिये आदमी भीतर मुड़ने की चेष्टा करता था। आज बाहर

के यात्रा पथ इतने सुगम हैं कि भीतर लौटने का ख्याल भी नहीं आता। आज बाहर जाने की इतनी सुविधा है कि भीतर जाने का सवाल भी नहीं उठता है। आज जब हम किसी से कहें भीतर जाओ तो उसकी समझ में नहीं आता, कहे चांद पर जाओ, मंगल पर जाओ बिल्कुल समझ में आता है।

चांद पर जाना आज आसान है, अपने भीतर जाना कठिन है। और आदमी जो सुगम है, सरल है उसको चुन लेता है। जहां (लीस्ट रेसिस्टेंस) है, उसे चुन लेता है। आदमी के अहंकार के अनुपात में उसकी नास्तिकता होती है, जितना अहंकार होता है, उतनी नास्तिकता होती है...क्यों ? क्योंकि आस्तिकता पहली स्वीकृति से शुरू होती है कि मैं अधूरा हूं।

ईश्वर है या नहीं, मुझे पता नहीं। लेकिन परम सत्य को जानने का मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है। बुद्धि आदमी के पास है, लेकिन बुद्धि से आदमी क्या जान पाता है ? जो नापा जा सकता वो बुद्धि से जाना जा सकता है, क्योंकि बुद्धि नापने की एक व्यवस्था है। जो मेजर मेंट के भीतर आ सकता है, वह बुद्धि से जाना जा सकता है।

हमारा शब्द है माया। माया बहुत अद्भुत शब्द है—उसका मौलिक अर्थ होता है देट विच केन बी मीजर्ड। जिसको नापा जा सके। माप्य जो है जिसको हम नाप सकें। तो बुद्धि केवल माया को ही जान सकती है जो नापा जा सकता है। समझें—एक तराजू है उससे हम उसी चीज को जांच सकते हैं जो नापी जा सकती है। एक तराजू को लेकर हम एक आदमी के शरीर को नाप सकते हैं लेकिन अगर तराजू से हम आदमी के मन को जानने चलें तो मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि मन तराजू पर नहीं नापा जा सकता। एक आदमी के शरीर में कितनी हड्डी-मांस-मज्जा है ये हम नाप सकते हैं : तराजू से, लेकिन एक आदमी के भीतर कितना प्रेम है, कितनी घृणा है, इसको हम तराजू से नहीं नाप सकते। इसका यह मतलब नहीं कि प्रेम है नहीं। इसका केवल इतना ही मतलब है कि जो मापने का उपकरण है, वो संगत नहीं है। जो भी मापा जा सकता है, उसे बुद्धि समझती है। जो भी गणित के भीतर आ जा सकता है, बुद्धि समझ सकती है, जो भी तर्क के भीतर आ जाता है, बुद्धि समझ सकती है। विज्ञान बुद्धि का विस्तार है। इसलिए विज्ञान उसी को मानता है जो नप सके, जांचा जा सके, परखा जा सके, छुआ जा सके, प्रयोग किया जा सके उसको ही—जो न छुआ जा सके, न परखा जा सके, न पकड़ा

जा सके, न तौला जा सके, विज्ञान कहता है वो है ही नहीं। वहां विज्ञान भूल करता है। विज्ञान को इतना ही कहना चाहिए कि उस दिशा में हमारे पास जाने का कोई उपाय नहीं है। हो भी सकता है, न भी हो, लेकिन बिना उपाय के कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। परमात्मा का अर्थ है : असीम। परमात्मा का अर्थ है : सब। परमात्मा का अर्थ है : जो भी है उसका जोड़। इस विराट को बुद्धि नहीं नाप पाती, क्योंकि बुद्धि भी इस विराट का एक अंग है। बुद्धि भी इस विराट का एक अंश है। अंश कभी भी पूर्ण को नहीं जान सकता और कभी भी अपने पूर्ण को नहीं पकड़ सकता। अगर मैं अपने हाथ से पूरे शरीर को पकड़ना चाहूं तो कैसे पकड़ूंगा, कोई उपाय नहीं है। मेरा हाथ कई चीजें उठा सकता है, लेकिन मेरा हाथ मेरे पूरे शरीर को नहीं उठा सकता। अंश है, छोटा है—शरीर बड़ा है। बुद्धि एक अंश है इस विराट में। एक बूंद सागर में। इस पूरे सागर को नहीं उठा पाती। तो बुद्धि उपाय नहीं है : जानने का। और हम बुद्धि से ही जानने की कोशिश करते हैं। दार्शनिक सोचते हैं, मनन करते हैं, तर्क करते हैं। बुद्धि से सोचते हैं कि ईश्वर है या नहीं। वे जो भी दलीलें देते हैं, दलीलें बचकानी हैं। बड़े से बड़े दार्शनिक ने भी ईश्वर के होने के लिए जो प्रमाण दिए हैं, वो बच्चा भी तोड़ सकता है।

जितने भी प्रमाण ईश्वर के होने के लिए दिए गए हैं, वे कोई भी प्रमाण नहीं हैं। क्योंकि उन सभी को खंडित किया जा सकता है। इसलिए प्रमाण से जो ईश्वर को मानता है, उसे कोई भी नास्तिक दो क्षण में मिट्टी में मिला देगा। ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है जो ईश्वर के होने को सिद्ध कर सके। क्योंकि अगर हमारा प्रमाण ईश्वर को सिद्ध कर सके तो हम ईश्वर से भी बड़े हो जाते हैं। और हमारी बुद्धि अगर ईश्वर के लिए प्रमाण जुटा सके और अगर ईश्वर को हमारे प्रमाणों की जरूरत हो तब ही वो हो सके और हमारे प्रमाण न हों तो वो न हो सके, तो हम ईश्वर से भी विराट और बड़े हो गए।

मार्क्स ने मजाक में कहा है कि जब तक ईश्वर को टेस्ट ट्यूब में न जांचा जा सके, तब तक मैं मानने को राजी नहीं हूं। लेकिन उसने फिर से ये भी कहा है कि और अगर ईश्वर टेस्ट ट्यूब में आ जाय और जांच लिया जाय तब भी मानूंगा नहीं क्योंकि तब मानने की कोई जरूरत नहीं रह गई। जो

टेस्ट ट्यूब में आ गया हो आदमी के उसको ईश्वर कहने का कोई कारण नहीं रह गया। वो भी एक तत्व हो जाएगा, जैसे आक्सीजन है, हाइड्रोजन है—वैसा ईश्वर भी होगा। हम उससे भी काम लेना शुरू कर देगें। पंखे चलायेंगे, बिजली जलायेंगे—कुछ और करेंगे। आदमी को मारेंगे, बच्चों को पैदा होने से रोकेंगे, या उम्र ज्यादा करेंगे। अगर ईश्वर को हम टेस्ट ट्यूब में पकड़ लें तो हम उसका भी उपयोग कर लें। विज्ञान तभी मानेगा जब उपयोग कर सके।

आदमी जो भी प्रमाण जुटा सकता है, वे प्रमाण सब बचकाने हैं, क्योंकि बुद्धि बचकानी है। उस विराट को नापने के लिए बुद्धि उपाय नहीं है। क्या कोई उपाय और हो सकता है, बुद्धि के अतिरिक्त? बुद्धि के अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी नहीं है। सोच सकते हैं, थोड़ा इसे हम समझ लें, कि इस सोचने का क्या अर्थ होता है तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा। हम सोच सकते हैं—आप क्या सोच सकते हैं—जो आप जानते हैं, उसी को सोच सकते हैं। सोचना जुगाली है, गाय-भैंस को आपने देखा घास चर लेती है फिर बैठकर जुगाली करती हैं। वो जो चर लिया है उसको वापिस चरती रहती है। विचार जुगाली है। जो आपके भीतर डाल दिया गया, उसको आप फिर जुगाली करते रहें। आप एक भी नई बात नहीं बोल सकते। कोई विचार नया नहीं होता। सब विचार बाहर से डाले गए हैं और फिर हम सोचने लगते हैं उन पर। सब विचार उधार हैं। तो जो हमने जाना नहीं है अब तक, उसको हम सोच भी नहीं सकते। सोच हम उसी को सकते हैं, जिसे हमने जाना है, जिसे हमने सुना है, जिसे हमने समझा है, जिसे हमने पढ़ा है—उसे सोच सकते हैं। ईश्वर को न तो पढ़ा जा सकता, न ईश्वर को सुना जा सकता, ईश्वर को सोचेंगे कैसे? ईश्वर है अज्ञात (अननोन), मौजूद है यहीं, लेकिन इसी तरह अज्ञात है जैसे अंधे के लिए प्रकाश अज्ञात है और अंधे के चारों ओर प्रकाश मौजूद है। अंधे की चमड़ी को छू रहा है, अंधे को जो गर्मी मिल रही है वो उसी प्रकाश से मिल रही है। और अंधे को जो उसका मित्र हाथ पकड़ के रास्ते पर चला रहा है, वो भी प्रकाश के कारण चला रहा है और अंधे के भीतर जो हृदय में धड़कन हो रही है—वो भी उसी प्रकाश की किरणों के कारण हो रही है। और इसके खून में जो गति है वो भी प्रकाश की किरणों के कारण। पूरा जीवन प्रकाश में लिप्त है, प्रकाश में डूबा है, अगर प्रकाश न हो तो अंधा नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी अंधे को प्रकाश का कोई भी पता नहीं चलता।

क्योंकि जो आंख चाहिए देखने की, वो नहीं है। अंधा जीता प्रकाश में है, होता प्रकाश में है, लेकिन अनुभव में नहीं आता। हम भी परमात्मा में हैं। उसके बिना न खून चलेगा, न हृदय धड़केगा, न श्वासें चलेंगी, न वाणी बोलेगी, न मन विचारेगा। उसके बिना कुछ भी नहीं होगा। वह अस्तित्व है। लेकिन, उसे देखने की अभी हमारे पास कोई भी इन्द्रिय नहीं है। हाथ हैं उनसे हम छू सकते हैं, जिसे हम छू सकते हैं —वो स्थूल है। सूक्ष्म को हम छू नहीं सकते। यहां भी सूक्ष्म, परमात्मा को अलग कर दें, पदार्थ में भी जो सूक्ष्म है उसे भी हम हाथ से नहीं छू सकते। हमारे पास कान हैं: हम सुन सकते हैं, कितना सुन सकते हैं; एक सीमा है। आपका कुत्ता आपसे हजार गुना ज्यादा सुनता है। उसके पास आपसे बड़ा कान है। अगर कान से परमात्मा का पता लगता होता तो आपसे पहिले आपके कुत्ते को पता लग जाएगा। घोड़ा आपसे १० गुना ज्यादा सूंघ सकता है —कुत्ता १० हजार गुना सूंघ सकता है। अगर सूंघने से परमात्मा का पता होता, तो कुत्तों ने अब तक उपलब्धि पा ली होती।

हमसे ज्यादा मजबूत आंखों वाले जानवर हैं, हमसे ज्यादा मजबूत हाथों वाले जानवर हैं, हमसे ज्यादा मजबूत स्वाद का अनुभव करने वाले जानवर हैं। मधुमक्खी ५ मील दूर से, फूल की गंध को पकड़ लेती है। अगर आपके घर में चोर हो तो उसके जाने के घंटा भर बाद भी कुत्ता उसकी सुगंध को पकड़ लेता है। उसके जाने के घंटा भर बाद भी। और फिर पीछा कर सकता है और १०–२० मील दूर कहीं भी चोर चला गया हो, अनुगमन कर सकता है। हमारे पास जो इन्द्रियां हैं उनसे स्थूल भी पूरा पकड़ में नहीं आता, सूक्ष्म की तो बात ही अलग है। हम जो सुनते हैं वो एक छोटी सी सीमा के भीतर सुनते हैं, उससे नीची आवाज भी हमें सुनाई नहीं पड़ती। हमारी सब इन्द्रियों की सीमा है, इसलिए असीम को कोई इन्द्रिय पकड़ नहीं सकती। हमारी कोई भी इन्द्रिय असीम नहीं, हमारा जीवन ही सीमित है। थोड़ा कभी आपने ख्याल किया कि आपका जीवन कितना सीमित है, घर में थर्मामीटर हो उसमें आप ठीक से देख लेना। सीमा पता चल जायेगी। इधर ९८ डिग्री के नीचे गिरे कि बिखरे। उधर १०८–११० डिग्री के पार जाने लगे कि गए। १२ डिग्री में मौत है। १२ डिग्री में जहां जीवन हो वहां परम जीवन को जानना बड़ा मुश्किल होगा। इस सीमित जीवन से उस असीम को हम कैसे जान पायें। जरा सा तापमान गिर जाए पृथ्वी पर सूरज का हम सब समाप्त हो जायेंगे। जरा सा तापमान बढ़ जाए हम सब वाष्पीभूत हो जायेंगे। हमारा होना कितनी

छोटी सी सीमा में —क्षुद्र सीमा में है। इस छोटे से क्षुद्र से जीवन से हम विराट अस्तित्व को जानने चलते हैं और कभी नहीं सोचते कि हमारे पास उपकरण क्या है कि हम नापेंगे। तो जो कह देता है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर है वो भी ना-समझ है, जो कह देता है बिना समझे-बूझे कि ईश्वर नहीं है वो भी नासमझ है। समझदार तो वो है जो सोचे पहले कि ईश्वर का अर्थ क्या होता है-विराट, अनंत, असीम में मेरी क्या स्थिति है ? इस मेरी स्थिति में उस विराट में क्या कोई सम्बन्ध बन सकता है ? अगर नहीं बन सकता तो विराट की फिकर छोड़ूं—मेरी स्थिति में कोई परिवर्तन करूं, जिससे संबंध बन सके। धर्म और दर्शन में यही फर्क है।

दर्शन सोचता है ईश्वर के सम्बन्ध में, धर्म खोजता है स्वयं को कि मेरे भीतर क्या कोई उपाय, क्या मेरे भीतर ऐसा कोई झरोखा है—क्या मेरे भीतर ऐसी कोई स्थिति है जहां से मैं छलांग लगा सकूं अनंत में। जहां मेरी सीमायें मुझे रोकें नहीं, जहां मेरे बंधन मुझे बांधें नहीं, जहां मेरा भौतिक अस्तित्व रुकावट न हो—जहां से मैं छलांग ले सकूं और विराट में कूद जाऊं और जान सकूं कि वो क्या है ?

अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें। परन्तु, मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को निःसंदेह तू समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिए दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूं, उससे तू मेरे प्रभाव को और योग-शक्ति को देख।

कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि जो आंखें तेरे पास हैं—प्राकृत नेत्र—इनसे तू मुझे देखने में समर्थ नहीं है। निश्चित ही—अर्जुन कृष्ण को देख रहा था। नहीं तो बात किससे होती ? यह चर्चा हो रही थी, अर्जुन कृष्ण को सुन रहा था, नहीं तो यह चर्चा किससे होती ? यहां ध्यान रखें कि एक तो वे कृष्ण हैं जो अर्जुन को अभी दिखाई पड़ रहे हैं—इन प्राकृत आंखों से और एक और कृष्ण का होना है जिसके लिए कृष्ण कहते हैं—तू मुझे न देख सकेगा इन आंखों से। तो जिन्होंने कृष्ण को प्राकृत आंखों से देखा है, वे इस भ्रांति में न पड़ें कि उन्होंने कृष्ण को देख लिया। अभी तक अर्जुन ने भी नहीं देखा है। वो साथ रहा है, दोस्ती है, मित्रता है। पुराने संबंध हैं, नाता है : अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा है। अभी उसने जिसे देखा है वो इन आंखों—प्राकृत आंखों और अनुभव के भीतर जो देखा जा सकता है वही।

अभी उसने कृष्ण की छाया देखी—अभी उसने कृष्ण को नहीं देखा। अभी उसने जो देखा है, वो मूल नहीं देखा—ओरीजनल नहीं देखा—अभी प्रतिलिपि ही देखी। जैसे कि दर्पण में आपकी छवि बनी है और कोई छवि को देखे। जैसे कोई आपका चित्र देखे। या पानी में आपका प्रतिबिम्ब बने और कोई प्रतिबिम्ब को देखे। पानी में प्रतिबिम्ब बनता है—ऐसे ही ठीक प्रकृति में भी आत्मा की प्रतिछवि बनती है। अभी अर्जुन जिसे देख रहा है वो कृष्ण की प्रतिछवि है—सिर्फ छाया है। अभी उसने उसे नहीं देखा है जो कृष्ण हैं। और आपने भी अभी अपने को जितना देखा है—वो भी आपकी छाया है। अभी आपने उसे भी नहीं देखा जो आप हैं। और अगर अर्जुन कृष्ण के मूल को देखने में समर्थ हो जाय तो अपने मूल को भी देखने में समर्थ हो जाएगा क्योंकि मूल को देखने की आंख एक ही है। चाहे कृष्ण के मूल को देखना हो, चाहे अपने मूल को देखना हो और छाया को देखने वाली आंख भी एक ही है। चाहे कृष्ण की छाया देखनी हो या अपनी छाया देखनी हो।

यहां कुछ बातें ध्यान में ले लें। पहली : कि कृष्ण जो दिखाई पड़ते हैं—अर्जुन को दिखाई पड़ते थे, आपको मूर्ति में दिखाई पड़ते हैं। अब थोड़ा समझें कि आपकी मूर्ति तो प्रतिछबि की भी प्रतिछबि है। छाया की भी छाया है। वो तो बहुत दूर है। कृष्ण की जो आकृति हमने मंदिर में बना रखी है, वो तो बहुत दूर है कृष्ण से। क्योंकि खुद कृष्ण भी जब मौजूद थे शरीर में तब भी वे कह रहे हैं कि मैं ये नहीं हूं जो तुझे अभी दिखाई पड़ रहा हूं और इन आंखों से ही अगर देखना हो तो यही दिखाई पड़ेगा जो मैं दिखाई पड़ रहा हूं। नयी आंख चाहिये। प्राकृत नहीं—दिव्य चक्षु चाहिए। इन आंखों को प्राकृत कहा है, क्योंकि इनसे प्रकृति दिखाई पड़ती है। इनसे दिव्यता दिखाई नहीं पड़ती। इनसे जो भी दिखाई पड़ता है वो मैटर है—पदार्थ हैं और जो भी दिव्य है वो इनसे चूक जाता है। दिव्य को देखने का इनके पास कोई उपाय नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं कि मैं तुझे अब वो आंख देता हूं जिससे तुझे मैं दिखाई पड़ सकूं। जैसा मैं हूं, अपने मूल रूप में अपनी मौलिकता में। प्रकृति में मेरी छाया नहीं, तू मुझे देख। लेकिन तब मैं तुझे नयी आंख देता हूं।

यहां बहुत से सवाल उठना स्वाभाविक हैं कि क्या कोई और आदमी किसी को दिव्य आंख दे सकता है ? कि कृष्ण कहते हैं कि मैं तुझे दिव्य

चक्षु देता हूं ! क्या ये सम्भव है कि कोई आपको दिव्य चक्षु दे सके ? और अगर कोई आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तब तो फिर अत्यंत कठिनाई हो जाएगी। कहां खोजिएगा कृष्ण को जो आपको दिव्य चक्षु दें। और अगर कोई आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तो कोई आपके दिव्य चक्षु ले भी सकता है। और अगर कोई दूसरा आपको दिव्य चक्षु दे सकता है तो फिर आपके करने के लिए क्या बचता है ? कोई देगा प्रभु की अनुकंपा होगी कभी तो हो जायेगा, फिर आपके लिए प्रतीक्षा के सिवाय कुछ भी नहीं है। फिर आपके लिए संसार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

इस पर बहुत सी बातें सोच लेनी जरूरी हैं। पहली बात तो ये कि कृष्ण ने जब कहा कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं इसके पहले अर्जुन अपने को पूरा समर्पित कर चुका है। रत्ती मात्र भी अपने को पीछे नहीं बचाया। अगर कृष्ण अब मौत भी दें तो अर्जुन उसके लिए भी राजी है। अब अर्जुन का अपना कोई आग्रह नहीं है। **आदमी जो सबसे बड़ी साधना कर सकता है वह समर्पण है—और जैसे ही कोई व्यक्ति समर्पित कर देता है पूरा—तब कृष्ण को चक्षु देने नहीं पड़ते—ये सिर्फ भाषा की बात है कि मैं तुझे चक्षु देता हूं। जो समर्पित कर देता है उस समर्पण की घड़ी में ही चक्षु का जन्म हो जाता है।** लेकिन शायद कृष्ण की मौजूदगी वहां न हो तो अड़चनें हो सकती हैं, क्योंकि कृष्ण कैटेलेटिक एजेंट का काम कर रहे हैं। जो लोग विज्ञान की भाषा से परिचित हैं वे कैटेलेटिक एजेंट का अर्थ समझते हैं। कैटेलेटिक एजेंट का अर्थ होता है जो खुद करे न कुछ लेकिन जिसकी मौजूदगी में कुछ हो जाय। वैज्ञानिक कहते हैं कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलके पानी बनता है। अगर आप हाइड्रोजन आक्सीजन को मिला दें तो पानी नहीं बनेगा। लेकिन अगर आप पानी को तोड़ें तो हाइड्रोजन और आक्सीजन बन जायगी। अगर आप पानी की एक बूंद को तोड़ें तो हाइड्रोजन आक्सीजन आपको मिलेगी और कुछ नहीं मिलेगा। स्वभावतः इसका नतीजा यह होना चाहिए कि अगर हम हाइड्रोजन आक्सीजन को जोड़ दें तो पानी बन जाना चाहिए। लेकिन बड़ी मुश्किल है, तोड़ें तो सिर्फ हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलती है जोड़ें तो पानी नहीं बनता। जोड़ने के लिए बिजली की मौजूदगी जरूरी है और बिजली उस जोड़ में प्रवेश नहीं करती—मौजूद होती है, जस्ट प्रजेंट, सिर्फ मौजूदगी चाहिए बिजली की। बिजली मौजूद हो तो हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलके पानी बन जाता है। बिजली

मौजूद न हो तो हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलके पानी नहीं बनता। वो जो बरसात में आपको बिजली चमकती दिखाई पड़ती है वो कैटेलिक एजेंट है उसके बिना वर्षा नहीं होती। उसकी वजह से वर्षा हो रही है। लेकिन वो पानी में प्रवेश नहीं करती, वो सिर्फ मौजूद होती है।

ये कैटैलिटिक एजेंट की धारणा बड़ी कीमती है और अध्यात्म में तो बहुत कीमती है, गुरु कैटेलिटिक एजेंट है। वो कुछ देता नहीं, क्योंकि अध्यात्म कोई ऐसी चीज नहीं कि दी जा सके। वो कुछ करता भी नहीं, क्योंकि कुछ करना भी दूसरे के साथ हिंसा करना है। जबरदस्ती करनी है। वो सिर्फ होता है मौजूद, लेकिन उसकी मौजूदगी काम कर जाती है, उसकी मौजूदगी जादू बन जाती है। सिर्फ उसकी मौजूदगी। और आपके भीतर कुछ हो जाता है, जो उसके बिना शायद न हो पाए। पहली तो बात यह है कि कृष्ण न हों तो समर्पण बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं मानता हूं कि अर्जुन को समर्पण जितना आसान हुआ होगा मीरा को उतना आसान नहीं हुआ होगा। इसलिए मीरा की कीमत अर्जुन से ज्यादा है। क्योंकि कृष्ण सामने मौजूद हों तब समर्पण करना आसान है। कृष्ण बिलकुल सामने मौजूद न हों तब दोहरी दिक्कत है। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो फिर समर्पण करो। मीरा को दोहरे काम करना पड़े। पहले तो कृष्ण को मौजूद करो: अपनी ही पुकार, अपनी ही अभीप्सा, अपनी ही प्यास से निर्मित करो, बुलाओ, निकट लाओ। ऐसी घड़ी आ जाय कि कृष्ण मालूम पड़ने लगें कि मौजूद हैं, रत्ती मात्र फर्क न रह जाय कृष्ण की इस मौजूदगी में और इसमें। दूसरों को लगेगी कल्पना कि मीरा कल्पना में पागल है: नाच रही है किसके पास। जो देखते हैं उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ता। और ये जो मीरा गा रही है और नाच रही है किसके पास। मीरा की आंखों में जो देखते हैं उन्हें लगता है कि कोई न कोई मौजूद जरूर होना चाहिए। या फिर मीरा पागल है। जो नहीं समझते उनके लिए मीरा पागल है। क्योंकि कोई भी नहीं है और मीरा नाच रही है तो पागल है। जो नहीं समझते हैं वो समझते हैं कल्पना है। लेकिन अगर कल्पना इतनी प्रगाढ़ है, इतनी सृजनात्मक है कि कृष्ण मौजूद हो जाते हों तो जो कल्पनाशील हैं वे धन्यभागी हैं जिनकी कल्पना इतनी सशक्त है कि कृष्ण के और अपने बीच के ५ हजार सालों को मिटा देती है, अंतराल टूट जाता हो, और मीरा ऐसे खड़ी हो जाती हो जैसे अर्जुन खड़ा है। तो पहली तो कठिनाई जब मौजूद कृष्ण न हों तो उनको मौजूद करने की और अगर कोई अपने मन को उनको मौजूद करने में राजी हो जाये तो

वो हर घड़ी मौजूद हैं, क्योंकि परम सत्ता तिरोहित नहीं होती सिर्फ उसके प्रतिबिंब तिरोहित होते हैं। परम सत्ता का मूल जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं कि अर्जुन तू देख सकेगा जब मैं तुझे आंख दूंगा वो मूल तो कभी नहीं खोता, प्रतिलिपियां खो जाती हैं। वो मूल कभी पानी में झलकता है और राम दिखाई पड़ते हैं, वो मूल कभी पानी में झलकता है और कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। ये भेद भी पानी की वजह से पड़ता है—अलग अलग पानी, अलग अलग प्रतिबिंब बनाते हैं। वो मूल एक ही बना रहता है। उस मूल का तो खोना कभी नहीं होता, वो आपके भी पार है। वो सदा आपके आस पास, आपको भी घेरे हुए है। जिस दिन आपकी कल्पना इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि आपकी कल्पना जल बन जाये, दर्पण बन जाये, उस दिन वो मूल फिर आप में प्रतिबिंब बना देता है। उसी प्रतिबिंब के पास मीरा नाच रही है। वो प्रतिबिंब मीरा को ही दिखाई पड़ रहा है क्योंकि वो उसने अपने ही कल्पना के जल में निर्मित किया है। किसी और को दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन जिनमें समझ हैं वो मीरा की आंख में भी उस प्रतिबिंब को पकड़ पाते हैं, वो मीरा की धुन और नाच में भी खबर मिलती है कि कोई पास है। क्योंकि मीरा जब उसके पास होने पर नाचती है तो फर्क होता है। मीरा के दो तरह के नाच हैं। एक तो वो कृष्ण को जब पकड़ नहीं पाती अपनी कल्पना में तब वो रोती है, तब वो उदास है, तब उसके पैर भारी हैं। तब वो चीखती है, चिल्लाती है। तब उसे जैसे मृत्यु घेर लेती है और एक वो घड़ी भी है, जब उसकी कल्पना प्रखर हो जाती है और कल्पना का जल स्वच्छ व साफ हो जाता है। और जब उस दर्पण में वो कृष्ण को पकड़ लेती है तब उसकी धुन और उसके पैरों की घुंघरू की आवाज और है। तब उसमें जैसे महा जीवन प्रवाहित हो जाता है। तब उसके रोयें-रोयें से जो गरिमा प्रगट होने लगती है—वो सूर्यों को फीका कर दे। तब वो और जैसे आविष्ट, जैसे कोई और उसमें प्रवेश कर गया है। जब वो रोती है विरह में तब उसकी उदासी, तब मीरा अकेली है, उसका प्रतिबिंब पकड़ में नहीं आ रहा है। और जब वो कहती है आनंद में, अहोभाव में—कृष्ण से बात करने लगती है—तब कृष्ण निकट हैं। उस निकटता में समर्पण-मीरा को कठिन पड़ा होगा अर्जुन को सरल रहा होगा। लेकिन उल्टी बात भी हो सकती है, जिन्दगी जटिल है। हो सकता है मीरा को ही सरल पड़ा हो, जो वास्तविक शरीर में खड़ा हो उसे परमात्मा मानना बहुत मुश्किल है। उसे भी प्यास लगती है, उसे भी भूख लगती है। वो भी

रात सोता है वो भी स्नान न करे तो बदबू आती है। वो भी रुग्ण होगा, मृत्यु आयेगी। पदार्थ से बने अस्तित्व के लिए पदार्थ के नियम मानने पड़ेंगे चाहे वो कोई भी किसी का भी प्रतिबिंब क्यों न हो। तो उसे परमात्मा मान लेना कठिन पड़ जाता है और परमात्मा न मान सके तो समर्पण असंभव हो जाता है।

सवाल यह नहीं है बड़ा कि कृष्ण परमात्मा हैं या नहीं। सवाल तो बड़ा यह है कि जो उन्हें परमात्मा मान पाता है उसके लिये समर्पण आसान हो जाता है। उसे समर्पण आसान हो जाता है। और जो समर्पण कर पाता है उसे परमात्मा कहीं भी दिखाई पड़ जाता है, इसे थोड़ा समझ लेंगे, जरा उल्टा है। कृष्ण का परमात्मा होना या न होना विचारणीय नहीं है, हों न हों। कोई तय भी नहीं कर सकता। कोई तय करने का रास्ता भी नहीं है, कोई परख का भी रास्ता नहीं है। लेकिन जो कृष्ण को परमात्मा मान पाता है उसके लिए समर्पण आसान हो जाता है। और जिसके लिए समर्पण आसान हो जाता है, उसे पत्थर में भी परमात्मा दिखाई पड़ जायगा, कृष्ण तो पत्थर नहीं हैं, उनमें तो दिखाई पड़ ही जायगा। अगर परमात्मा भी आपके सामने मौजूद हो और आप परमात्मा न मान पायें तो समर्पण न कर सकेंगे। समर्पण न कर सकें तो सिर्फ पदार्थ दिखाई पड़ेगा, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता। **समर्पण आपका द्वार खोल देता है।**

कृष्ण ने अर्जुन को आंख दी वो सिर्फ उसी अर्थ में जैसा कैटेलिटिक एजेंट का अर्थ होता है। उनकी मौजूदगी में। कृष्ण ने दे नहीं दी, नहीं तो वो पहले ही दे देते। इतनी देर इतना उपद्रव, इतनी चर्चा करने की क्या जरूरत थी। इतना युद्ध को विलंब करवाने की क्या जरूरत थी। अगर कृष्ण ही आंख दे सकते थे बिना अर्जुन की किसी तैयारी के तो ये आंख पहले ही दे देते। इतना समय क्यों व्यर्थ खोया। नहीं, जब तक अर्जुन समर्पित न हो, ये आंख अर्जुन को नहीं आ सकती। समर्पित हो तो आ सकती है। लेकिन अगर कृष्ण मौजूद न हों तो भी बहुत कठिनाई है इसके आने में। बहुत बार ऐसा हुआ है कि निकट मौजूद न हो दिव्य व्यक्ति, तो लोग आखिरी किनारे से भी वापिस लौट आए हैं। क्योंकि कैटेलिटिक एजेंट नहीं मिल पाता। अनेक बार लोग उस घड़ी तक पहुंच जाते हैं जहां समर्पित हो सकते थे लेकिन कहां समर्पित हों—वो कोई दिखाई नहीं पड़ता। यदि उनकी कल्पना प्रखर और

सृजनात्मक हो, अगर वे बड़े बलशाली चैतन्य के व्यक्ति हों और भावना गहन और प्रगाढ़ हो तो वो उस व्यक्ति को निर्मित कर लेंगे जिसके प्रति समर्पित हो सकें। और नहीं तो वापिस लौट आयेंगे। बहुत से आध्यात्मिक साधक भी समर्पित नहीं हो पाते और तब अधूरे में लटके फिरते हैं क्योंकि भ्रांति रह जाती है।

गुरु का उपयोग यही है कि वो मौका बन जाय। मूर्ति का भी उपयोग यही है कि वो मौका बन जाये—मंदिर का, तीर्थ का भी उपयोग वही है कि मौका बन जाय। आपको आसानी हो जाय कि आप अपने सिर को झुका लें, लेट जायें—खो जायें। अभी एक जर्मन युवती मेरे पास आई, लौटती थी सिक्किम से। वहां एक तिब्बती आश्रम में साधना करती थी ६ महीने से। मैंने उससे पूछा कि वहां क्या साधना तू कर रही है। उसने कहा कि अभी ६ महीने तक तो नमस्कार करना ही सिखाया गया है। सिर्फ नमस्कार करना, ६ महीने कैसे इसमें व्यतीत हुए होंगे। उसने कहा कि दिन भर करना पड़ता था, जो भी २०० भिक्षु हैं उस आश्रम में, कोई भी दिखाई पड़े तत्क्षण लेटकर साष्टांग दंडवत करना पड़ता है। दिन में ऐसा कभी १ हजार दफे भी हो सकता है कभी २ हजार दफे भी हो सकता है। बस इतनी साधना थी अभी उनके पास। इस साधना से हुआ क्या...उसने कहा अद्‌भुत हो गया। मैं हूं इसका मुझे ख्याल ही बिसर गया, एक नमस्कार का सहज भाव भीतर बैठ गया और पहले तो ये देखके नमस्कार करती थी कि जिसे कर रही हूं नमस्कार वो नमस्कार के योग्य है या नहीं। अब तो कोई भी हो सिर्फ निमित्त है नमस्कार करने में। और अब बड़ा मजा आ रहा है, अब तो जो आश्रम में भिक्षु भी नहीं है जिनको नमस्कार करने की कोई जरूरत नहीं है उनको भी नमस्कार कर रही हूं। और कभी कभी आश्रम के बाहर चली जाती हूं और वृक्षों को, चट्टानों को भी नमस्कार करती हूं। अब ये बात गौण है कि किसको नमस्कार की जा रही है, अब ये बात महत्वपूर्ण है कि नमस्कार में परम आनंद से भर जाती हूं।

नमस्कार अहंकार का विरोध है—झुक जाना अहंकार की मौत है। जो नहीं झुक पाता वो कितना भी पवित्र हो जाये, सिद्ध हो जाये, चरित्र-आचरण सब अर्जित कर ले, ब्रह्मचर्य फलित हो जाये, अहिंसक हो जाए, सत्यवादी हो जाए, लेकिन न झुक पाए तो भी आंख नहीं खुलेगी। अब

उसके लिए ये सारी पवित्रता भी उसका अहंकार बन जाएगी। अब ये भी उसका दंभ होगा। और, इसलिए अकसर ऐसा होता है कि चरित्रवान, तथाकथित चरित्रवान—चरित्रहीनों से भी ज्यादा अहंकारी हो जाता है। और अहंकार से बड़ा उपद्रव नहीं है। अच्छा आदमी अक्सर अहंकारी हो जाता है, क्योंकि सोचता है मैं अच्छा हूं। इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि पापी परमात्मा के पास जल्दी पहुंच जाते हैं बजाय साधुओं के, इसका ये मतलब भी नहीं कि आप साधु मत होना। इसका कुल मतलब इतना है कि साधु के साथ भी अहंकार हो तो रोकेगा और पापी के साथ अहंकार न हो तो पहुंचा देगा। इसका इतना ही मतलब हुआ कि अहंकार से बड़ा पाप और कोई भी नहीं है। और निरहंकारिता से बड़ी कोई साधुता नहीं।

अर्जुन झुक गया, उसने कहा अब जो मर्जी, अब मैं राजी हूं। अब न मेरा कोई संदेह है न कोई सवाल है, अब तुम जो करना चाहो। तो कृष्ण ने कहा तुझे मैं अलौकिक चक्षु देता हूं। दिव्य चक्षु देता हूं।

दिव्य चक्षु के सम्बन्ध में थोड़ी बातें समझ लेना जरूरी हैं। थोड़ी कठिन है। क्योंकि हमें उसका कोई पता नहीं है। तो किस भाषा में कैसे उसे पकड़ें। अभी हम देखते हैं, अभी हम आंख से देखते हैं। रात आप सपना भी देखते हैं, कभी आपने ख्याल किया कि वो आप बिना आंख के देखते हैं। आंख तो बन्द होती है, आप सपना देख रहे हैं। बिना आंख के देख रहे हैं, अगर आपकी आंख फूट भी जाये, आप अंधे हो जायें—तो भी आप सपना देख सकेंगे। जन्मांध नहीं देख सकेगा और जन्मांध अगर देखेगा भी सपना तो उसमें आंख का हिस्सा नहीं होगा, कान का हिस्सा होगा, हाथ का हिस्सा होगा, सुनेगा सपने में, देख नहीं सकेगा। लेकिन अगर आप अन्धे हो जायें तो आप आंख के बिना भी सपने देख सकेंगे। सपना बिना आंख के देखते हैं, कौन देखता है। शायद आपने कभी सोचा नहीं—आंख के बिना भी देखना हो जाता है। अंधेरा होता है, आंख बन्द होती है—आप भीतर सपना देखते हैं। सपना रोशन होता है, जिनके पास थोड़ी कलात्मक रुचि है, वे रंगीन सपना भी देखते हैं। जो थोड़े कलाहीन हैं वे ब्लैक-व्हाइट देखते हैं, जो थोड़े कवि हैं, जिनके मन में काव्य है या चित्रकार जिनके भीतर छिपा है वो रंगीन भी देखते हैं। रंग भी दिखाई पड़ते हैं बिना आंख के। कान बन्द हों तो सपने में आवाज सुनाई पड़ती है और हाथ तो होते नहीं भीतर इसलिए सपने में स्पर्श होता है, गले मिलना होता है। एक बात तय है कि

जो आपके भीतर देखने वाला है उसका आंख से कुछ बंधाव नहीं है, आंख से देखने की कोई अनिवार्यता नहीं है। आंख जरूरी नहीं है देखने के लिए। लेकिन बाहर देखने के लिए जरूरी है। भीतर देखने के लिए जरूरी नहीं है। भीतर तो आंख बन्द करके भी देखा जा सकता है। तो एक तो बात ख्याल में लें कि जो आंखें हमारी हैं, वो हमारी दर्शन की क्षमता नहीं है। केवल दर्शन को बाहर ले जाने वाले द्वार हैं, माध्यम हैं, हमारी देखने की क्षमता को बाहर ले जाने की व्यवस्था है। इंस्ट्रुमेंटल है, देखने वाला भीतर है।

दिव्य चक्षु का अर्थ होता है सिर्फ देखने वाला ही हो, बिना किसी माध्यम के। क्यों! क्योंकि माध्यम सीमा बनाता है, जिससे आप देखते हैं, उससे आपकी सीमा बंध जाती है। जब कोई भी देखने का माध्यम न हो और देखने की शुद्ध क्षमता भीतर जागृत हो जाए तो जो दिखाई पड़ता है वो असीम है। ऐसा ही समझें कि आप एक छोटे से छेद से दीवाल के अपने घर के भीतर छिपे हुए, बाहर के आकाश को देखें। फिर आप दीवाल को तोड़ के और बाहर खुले आकाश के नीचे आकर खड़े हो जायें। अभी तक हमने अपने शरीर के भीतर छिपके जगत को आंखों के छेद से देखा है। इन आंखों का विस्मरण करके सिर्फ भीतर देखने वाला ही सजग हो जाए, सिर्फ देखने वाला ही रह जाय जिसको हम दृष्टा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, सिर्फ चैतन्य भीतर रह जाये और कोई माध्यम न हो देखने का तो खुला आकाश प्रगट हो जाता है। वो देखने की शुद्ध क्षनता बिना माध्यम के, उसका नाम ही दिव्य चक्षु है। उसे दिव्य इसलिए कह रहे हैं कि फिर हम असीम को देख सकते हैं, फिर सीमा से कोई सम्बन्ध न रहा। ध्यान रहे वस्तुओं में सीमा नहीं है, हमारी इन्द्रियों के कारण दिखाई पड़ती है। इस जगत में कुछ भी सीमित नहीं है, सब असीम है। लेकिन हमारे पास देखने का जो उपाय है, वह सभी पर सीमा बिठा देता है। ये ऐसा है जैसे कोई एक आदमी रंगीन चश्मा लगा कर देखना शुरू कर दे सब चीज रंगीन हो जाती हैं। और अगर हम जन्म के साथ ही रंगीन चश्मे को लेकर पैदा हुए हों तो हमें ख्याल भी नहीं आ सकता कि चीजें रंगीन नहीं हमारे चश्मे के दिए गए रंग हैं।

हम जो भी अपने चारों तरफ देख रहे हैं, वो वही नहीं है जो है। हम वही देख रहे हैं जो हम देख सकते हैं। हम वही सुन रहे हैं जो सुन सकते हैं। हम वही अनुभव कर रहे हैं जो हम अनुभव कर सकते हैं।

चुनाव कर रहे हैं हम—सिलेक्टिव है हमारा सारा अनुभव, क्योंकि हमारी सारी इन्द्रियां चुनाव कर रही हैं। अभी वैज्ञानिक इस पर बहुत अध्ययन करते हैं तो वो कहते हैं कि १०० में से हम केवल २ प्रतिशत देख रहे हैं। जो भी हमारे चारों तरफ घटित होता है उसमें ९८ प्रतिशत हमें पता ही नहीं चलता। उसे हम सुनते ही नहीं। वो हमसे छूट ही जाता है।

इसे हम थोड़ा ऐसे समझें कि आप एक रास्ते से भागे चले जा रहे हैं और आपके घर में आग लगी है। उसी रास्ते से आप रोज गुजरते हैं, आज भी गुजर रहे हैं। रास्ते में वही बातें आप नहीं देखेंगे जो आप रोज देखते हैं। एक सुन्दर स्त्री पास से निकलेगी आपको पता ही नहीं चलेगा। ऐसा बहुत बार आपने चाहा था कि ऐसी घड़ी आ जाए किसी दिन कि सुन्दर स्त्री पास से निकले और पता न चले, वो घड़ी कभी नहीं आई लेकिन आज मकान में आग लग गई है तो घड़ी आई है। सुन्दर स्त्री पास से निकलती है तो आपकी स्थिति वही नहीं है जो बुद्ध की रही होगी। अभी आपको बिलकुल दिखाई नहीं पड़ती है, लेकिन बुद्ध को मकान में बिना आग लगे, आपको मकान में आग लगे तब। क्या हो गया है : आंखें वही हैं, कान वही हैं, रास्ते पर एक गीत चल रहा है, आज सुनाई नहीं पड़ता। कोई नमस्कार करता है कितनी दफे चाहा था कि ये आदमी नमस्कार करे और इस ना-समझ को आज नमस्कार करने का अवसर मिला, वो आज दिखाई नहीं पड़ता। आज मकान में आग लगी है, आपकी सारी चेतना एक तरफ दौड़ गई है, आपकी सारी इन्द्रियां निःस्तेज हो गईं हैं, कोई भी इन्द्रिय से आपकी चेतना का सहयोग नहीं रहा है, टूट गया है। आंख से देखने के लिए आपके पीछे आपकी मौजूदगी जरूरी है, आज आपकी मौजूदगी यहां नहीं है, मकान में आग लगी है वहां मौजूद है। आंख से अब आप भाग रहे हैं, आंख से अब आप इतना ही काम ले रहे हैं, कि किस तरह आप अपने मकान के पास पहुंच जायें जहां आपकी चेतना पहले ही पहुंच गई है। इस शरीर को उस मकान के पास तक पहुंचा दें जहां आपका मन पहले ही पहुंच गया है। बस इतना इस आंख से काम लेना, बाकी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। ऐसा समझें कि रास्ते पर ९८, ९९ प्रतिशत चीजों के लिए आप अंधे हो गए हैं सिर्फ १ प्रतिशत आंख का काम रह गया है। संसार से जब कोई १०० प्रतिशत अंधा हो जाता है, तो दिव्य चक्षु उत्पन्न होता है। लेकिन वो जो १ प्रतिशत भी है वो भी काफी है। जोड़ तो बना ही हुआ है। और १ प्रतिशत के पीछे फिर वापिस ९९ प्रतिशत

लौट आएगा। जब कोई संसार के प्रति १०० प्रतिशत अनुपस्थित हो जाता है, इस अनुपस्थिति का पारिभाषिक नाम वैराग्य है। वैराग्य का ये मतलब नहीं कि घर को छोड़के कोई भाग जाए, छोड़ने में भी राग है, छोड़ने में भी घर की पकड़ है। क्योंकि जो पकड़े है वही छोड़ता है। आप छोड़ने की कोशिश करते हैं इसका मतलब है पकड़ भारी है। और छोड़कर जो भाग जाता है उसके भागने में उतनी ही गति होती है जितनी पकड़ मजबूत होती है। क्योंकि वो डरता है कि कहीं खींच न लिया जाऊँ। जोर से भाग जाऊँ-सब बीच के सेतु तोड़ दूं कि लौटने का कोई रास्ता न रहे। सब रास्ते गिरा दूं कि फिर वापिस न लौट सकूं। लेकिन ये सब भय वैराग्य नहीं है। वैराग्य का मतलब तो इतना ही है कि संसार जहां है-वहां है। न मैं इसे छोड़ता हूं न पकड़ता हूं। सिर्फ, मैं उसके प्रति मेरी जो चेतना सभी इन्द्रियों से दौड़ती थी उसके प्रति उससे वापिस लौट आता हूं। चेतना का प्रतिक्रमण उसकी वापिसी, उसका लौट आना, बस इतना ही वैराग्य का अर्थ है। अगर आंख भी राजी हो जाए, तो दिव्य चक्षु खुल जाता है।

समर्पण कोई करता ही तब है जब संसार में रस न रह जाये। इसे थोड़ा समझ लें। संसार में थोड़ा भी रस हो तो समर्पण नहीं हो सकता। थोड़ी भी वासना हो तो हम कहेंगे, वासना का मतलब ही होता है कि हम चाहेंगे कि ऐसा हो, समर्पण का मतलब होता है कि अब मैं कहता हूं जैसा परमात्मा चाहे—अगर मेरे भीतर जरा सी भी वासना है तो मैं कहूंगा कि सब कर सकता हूं बस परमात्मा इतना मेरे लिए कर देना, बाकी सब समर्पण है—ताकि ये मकान मुझे मिल जाए, इतनी शर्त।

सुना है मैंने फकीर जुन्नैद एक दिन प्रार्थना कर रहा है, और परमात्मा से वो कह रहा है कि वर्षों हो गए तेरी पुकार, तेरी प्रार्थना के गीत गाते, सब तुझ पर छोड़ दिया। मेरे लिए तेरे सिवाय और कुछ भी नहीं। एक बात पूछनी है—ये तो मेरी भावना है कि मेरे लिए तेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है, तुझसे भी मैं पूछना चाहता हूं कि मेरी तरफ तेरी क्या नजर है? वो तो मेरा ख्याल है कि मेरे लिए तेरे सिवाय और कोई भी नहीं है। तेरी क्या नजर है मेरी तरफ, इसका भी तो पता चले। तो कहते हैं आवाज जुन्नैद को सुनाई पड़ी कि इसी वासना के कारण तू मुझसे दूर है। इतनी सी वासना भी, तेरा इतना भी आग्रह कि आपका क्या ख्याल है मेरे प्रति—अभी तू अपने को पकड़े हुए है। तूने अपने को छोड़ा नहीं, तूने पूरा नहीं छोड़ा।

अभी आखीर में तू मौजूद है। और जानना चाहता है कि परमात्मा मेरे बाबद क्या सोचता है। केन्द्र में तू ही है अभी परमात्मा परिधि पर है।

इतनी सी वासना भी बाधा है, समर्पण तो वही कर पाएगा जिसको संसार में कुछ अर्थ नहीं रहा। शायद अर्जुन इस घड़ी में आ गया। अब उसे कुछ अर्थ दिखाई नहीं पड़ता। वो सारा युद्ध-स्थल, वो सारे लोग सब खो गए, सब स्वप्न हो गए। वो कहता है मैं सब छोड़ने को राजी हूं। अगर आप चाहते हैं और शक्य हो और उचित मानें तो मुझे दिखा दें। इस समर्पण की घड़ी में कृष्ण ने कहा कि तुझे मैं दिव्य अलौकिक चक्षु देता हूं। क्यों कहा देता हूं—भाषा की मजबूरी है। भाषा में सब तरफ द्वन्द्व है। भाषा में जो भी कहा जाय वह द्वैत हो जाता है। अगर कृष्ण ऐसी भाषा बोलें जो कि द्वैत न हो तो अर्जुन की समझ में नहीं आएगा। अभी तो नहीं आएगा। अभी दिव्य चक्षु तो मिला नहीं, अभी तो भाषा लेने-देने की बोलना पड़ेगी। हम भी भाषा में जब किसी ऐसे अनुभव को रखते हैं जो भाषा के पार है तो अड़चन आनी शुरू होती है।

आप किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम देता हूं। पर आपने कभी ख्याल किया कि प्रेम क्या दिया जाता है या आप चाहते तो देने से क्या रोक सकते थे। प्रेम होता है, दिया नहीं जा सकता। या फिर कोशिश करके देखें किसी को प्रेम दे के, कि चलो इसको कोशिश करें, अभ्यास करें कि प्रेम दें। तब आप पायेंगे कि कुछ नहीं हो रहा। कुछ हो ही नहीं रहा, प्रेम की कोई उर्जा प्रगट नहीं होती, कोई किरण नहीं जगती, कोई धुन पैदा नहीं होती, कुछ नहीं होता। आप नकल कर सकते हैं, अभिनय कर सकते हैं, लेकिन प्रेम नहीं दिया जा सकता। प्रेम होता है। यद्यपि हम भाषा में कहते हैं कि प्रेम देते हैं, वो देना गलत है। मगर भाषा ठीक है। भाषा में कोई अड़चन नहीं है क्योंकि सारी भाषा लेने देने पर निर्मित है। और प्रेम देने के बाहर है। इसलिए जीसस ने कहा कि 'प्रेम ही परमात्मा है।' और किसी कारण से नहीं, इसलिए नहीं कि परमात्मा बहुत प्रेमी है। सिर्फ इसलिए कि मनुष्य के अनुभव में प्रेम एक अद्वैत का अनुभव है उससे समझ में आ जाय शायद। जैसा कि प्रेमी को कठिन हो जाता है कहना कि देता हूं, होता है—जैसे स्वांस चलती है, ऐसा प्रेम चलता है। शायद स्वांस को तो हम रोक भी सकते हैं थोड़ी देर, प्रेम को हम रोक भी नहीं सकते। शायद स्वांस को हम बाहर भी जोर से फेंक सकते हैं, लेकिन प्रेम को हम जोर से फेंक भी

नहीं सकते। हम प्रेम के साथ कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिए प्रेमी एकदम असहाय हो जाता है, हेल्पलैस हो जाता है, उस समय कुछ भी नहीं कर सकता, उससे बड़ी शक्ति ने उसे पकड़ लिया। इसलिए प्रेमी हमें पागल मालूम पड़ने लगता है क्योंकि वो सारा नियंत्रण खो देता है। अब वो कुछ कर नहीं सकता, कुछ और उसमें हो रहा है जिसमें उसे बहना ही पड़ेगा। और किसी बड़ी धारा ने उसे पकड़ लिया, जिसमें कुछ करने का उपाय नहीं है—तैर भी नहीं सकता। इसलिये जो समझदार हैं : तथाकथित समझदार, वो प्रेम करने से बचते हैं, नहीं तो कंट्रोल खो जाता है। नियंत्रण खो जाता है। समझदार पैसे की फिक्र करते हैं, प्रेम की नहीं क्योंकि पैसे पर नियंत्रण हो सकता है, लिया दिया जा सकता है, तिजोड़ी में रखा जा सकता है, जरूरत हो वैसा उपयोग किया जा सकता है।

प्रेम आपसे बड़ा साबित होता है। ध्यान रहे प्रेम प्रेमी से बड़ा साबित होता है, प्रेमी छोटा पड़ जाता है और प्रेम बड़ा हो जाता है। प्रेमी एक तूफान एक अंधड़ में फंस जाता है। कोई बड़ी ताकत, उससे बड़ी ताकत उसे चलाने लगती है—प्रेमी असहाय हो जाता है। फिर भी प्रेमी भाषा में कहता है मैं प्रेम देता हूं। ठीक ऐसे ही कृष्ण ने कहा है कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं। कृष्ण चाहते भी और अर्जुन का समर्पण पूरा होता तो दिव्य चक्षु देने से रुक नहीं सकते—यह ख्याल में ले लें। चाहते भी तो दिव्य चक्षु देने से रोका नहीं जा सकता था। कृष्ण का होना पास और अर्जुन का समर्पण—दिव्य चक्षु घटता ही। वैसे ही घटता जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है। ऐसे ही परमात्मा भी अर्जुन की तरफ बहता ही, कोई उपाय नहीं है। लेकिन जरा अजीब-सा लगता कि कृष्ण कहते कि दिव्य चक्षु तुझमें घटित हो रहा है। वो अर्जुन की समझ के बाहर होता। सच ही देना नहीं है वो एक घटना है। लेकिन भाषा हमेशा अद्वैत को द्वैत से जोड़ देती है। और जहां दो हो जाते हैं वहां लेना-देना हो जाता है। इसलिए, प्रेम को दिया-लिया नहीं जा सकता क्योंकि वहां दो नहीं रह जाते : कौन दो—वहां एक ही रह जाता है। समर्पण की इस घड़ी में अर्जुन मिल गया कृष्ण की सत्ता के साथ—सागर बूंद की तरफ दौड़ पड़ा, आंख खुल गई—सीमायें टूट गईं। सब ढांचे गिर गए—खुले आकाश को वो देख सका।

(नोट : शेष ९ से ११ वें श्लोक का प्रवचन अगले अंक में —सं०)

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

११ दिसंबर, १९७३

भगवान रजनीश

—: जन्म-दिवस विशेषांक :—

युक्रांद परिवार का निवेदन

सितंबर अंक आपके हाथों में है, शीघ्र ही अक्टूबर अंक होगा। तत्पश्चात् हमारा नवंबर का अंक "भगवान रजनीश जन्म-दिवस" विशेषांक होगा।

आपसे निवेदन है कि आप १६ नवंबर तक भगवान श्री पर अपने संस्मरण, प्रेरणा-स्मृतियां, काव्यमय हृदय के स्वर, ध्यान - योग पर अपने अनुभव और भगवान की—ध्यान के समय आप पर—सूक्ष्म सक्रिय आध्यात्मिक अमृत-वर्षा, अन्य विविध भगवान श्री के सान्निध्य में आध्यात्मिक जीवन के अनुभवों को हमें पहुंचा दें।

रचनायें पृष्ठ के एक ओर सुस्पष्ट लिखावट में हों।

विशेष—आप 'युक्रांद' के इस अंक हेतु अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान के विज्ञापन, शुभकामनायें हमें अवश्य पहुंचायें—अपनी स्वेच्छा से आर्थिक सहयोग के साथ। विज्ञापन के साथ--ब्लाक भी आप हमें भिजवा सकें तो कृपा होगी।

शेष भगवत् कृपा।

निवेदक :

युक्रांद परिवार

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चितता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात ३–००
(आध्यात्मिक उपन्यास)
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

दीपावली है प्रकाश का त्यौहार !

लेकिन, उसे भी मनुष्य ने झूठा कर दिया है।

क्योंकि, बाहर के दियों से अन्तर तो प्रकाशित नहीं होता है ?

हां—उससे भ्रम जरूर हो जाता है कि प्रकाश के दिये जल रहे हैं !

काश ! बाहर का प्रकाश भीतर के अन्धकार को मिटा पाता ?

लेकिन; मृण्मय दिये चिन्मय को आलोकित करने में असमर्थ हैं।

मैं कहता हूं : बच्चों के खेल छोड़ो।

प्रकाश का त्यौहार जरूर मनाओ।

लेकिन, ध्यान के दिये जला कर।

स्वयं बनो आलोक तभी अन्धकार मिटता है।

रजनीश के प्रणाम